मोहरिते सच्चवयणस्स पलिमंथू (ठाणंगसुत्त, ५२९)
'मुखरता सत्यवचननी विघातक छे'

¥Ý¨‹{æÝ

प्राकृतभाषा अने जैनसाहित्य-विषयक
सम्पादन, संशोधन, माहिती वगेरेनी पत्रिका

६७

सम्पादक :
विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीहेमचन्द्राचार्य

कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी
स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि
अहमदाबाद
२०१५

अनुसन्धान ६७

आद्य सम्पादक : **डॉ. हरिवल्लभ भायाणी**

सम्पादक : **विजयशीलचन्द्रसूरि**

सम्पर्क : C/o. **अतुल एच. कापडिया**
A-9, जागृति फ्लेट्स, पालडी
महावीर टावर पाछळ, अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६५७४९८१
E-mail : s.samrat2005@gmail.com

प्रकाशक : **कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्य नवम जन्मशताब्दी स्मृति संस्कार शिक्षणनिधि, अहमदाबाद**

प्राप्तिस्थान : (१) **आ. श्रीविजयनेमिसूरि जैन स्वाध्यायमन्दिर**
१२, भगतबाग, जैननगर, नवा शारदामन्दिर रोड,
आणंदजी कल्याणजी पेढीनी बाजुमां,
अमदावाद-३८०००७
फोन : ०७९-२६६२२४६५

(२) **सरस्वती पुस्तक भण्डार**
११२, हाथीखाना, रतनपोल,
अमदावाद-३८०००१
फोन : ०७९-२५३५६६९२

प्रति : ३००

मूल्य : ₹ 150-00

मुद्रक : **क्रिश्ना ग्राफिक्स, किरीट हरजीभाई पटेल**
९६६, नारणपुरा जूना गाम, अमदावाद-३८००१३
(फोन: ०७९-२७४९४३९३)

निवेदन

'संशोधन' ए धूळधोयानो धंधो छे; बहु ओछाने एमां रस पडे.

धूळधोया लोको शहेर के गामना चोकसी/सोनी बजारना मार्ग परनी गटर/खाळमां एकठा थयेला कांप/कचराने रोज सवारे एकठो करे. पोतानां ठाममां भरीने लई जाय. पछी गळणां/चालणी प्रकारनां विविध साधनो वडे ते कांपने गाळे, धुए, अने एम करतां करतां कलाकोनी महेनत पछी ते सुंडलाओ–भरेला कांपमांथी तेमने थोडीक सोना के चांदीनी झीणी करचो मळी आवे, त्यारे तेमने तेमनी ए मजूरी, कांप–कचरा साथेनी, गंदवाड भरेली ने गंदा करी मूकनारी महेनत, सार्थक थयेली लागे. पण आवुं काम करनारा बहु ओछा–जूज–होय. धूळ धोईने सोनुं पामे ते आ धूळधोया.

संशोधकनुं कार्य एक रीते आ धूळधोयाना काम जेवुं ज गणाय. ग्रन्थ–संशोधन होय, पुरातत्त्व होय, इतिहासनुं क्षेत्र होय के तेवुं अन्य कोई पण क्षेत्र होय, एमां ढगलोएक सामग्री फेंदवानी–तपासवानी; तेमांथी सोनानी झीणी करचो जेवी, गुप्त–लुप्त बाबतो शोधी काढवानी; अने ते द्वारा ग्रन्थना अर्थने के इतिहासनी धारणाओने बदली नाखती यथार्थ भूमिका सरजी आपवानी.

आमां समयनो घणो व्यय थाय; श्रम – बौद्धिक अने शारीरिक पण घणो लागे; ते कर्या पछी पण घणीवार कशुं नवुं हाथ न लागे तेवुं पण बने अने तो पण हारवा–कंटाळवानुं न होय, पण पुनः नवेसरथी पोताना अन्यान्य शोधकार्यमां खूंपेला ज रहेवानुं होय; एक साचुकला अने सफल संशोधक माटे, एक सफल धूळधोयानी माफक ज, आ अपेक्षित अने आवश्यक स्थिति छे.

धूळधोयाने, छ–आठ कलाकना थकवी देनारा श्रम पछी, सोनानी एक कणी जडी जाय तो केटलो हरख थाय ! तो, एक संशोधकने, आकरा बुद्धि–व्यायामने अन्ते, कोई नवो ज पदार्थ के तथ्य, मळी आवे तो केवी तृप्ति अनुभवाय !

– शी.

अनुक्रमणिका

सम्पादन

श्रीमुनिचन्द्रसूरि–प्रणीत कालविचारशतक	सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	१
१३मा शतकनी त्रण प्राञ्जल रचनाओ	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	२१
अहो, वर बोलि	सं. विजयशीलचन्द्रसूरि	२७
श्रीसोमदेवसूरिरचितः धरणविहारस्थ–युगादिदेवस्तवः (सावचूरिः)	सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	३६
श्रीजयचन्द्रसूरि–शिष्य–रचितं देलउलालङ्कार–ऋषभप्रभुस्तोत्रम्	सं. अमृत पटेल	४०
पं. श्रीदेवधर्मगणिकृतं संस्कृतप्राकृतभाषा–निबद्धं श्रीवृषभजिनस्तवनम्	सं. अमृत पटेल	४५
मुनि श्रीसाधुकीर्ति–रचित आषाढाभूति–प्रबन्ध	सं. अनिला दलाल	४७
मुनि श्रीनेमिकुंजरकृत गजसिंहरायचरित्ररास	सं. किरीट शाह	६८
महोपाध्याय श्रीयशोविजयगणि–शिष्य श्रीतत्त्वविजयगणिरचित पांच लघुकृतिओ	सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	८५
बाई मदैकवरनी बार व्रतनी टीप	सं. मुनि धर्मकीर्तिविजय गणि	९२

स्वाध्याय

आगमसूत्रों के शुद्धपाठ के निर्णयविषयक कुछ विचारबिन्दु	आचार्य श्रीरामलालजी म.	९७
विहंगावलोकन	उपा. भुवनचन्द्र	१५४

पत्रचर्चा

मस्करिन्/मङ्खलि विशे	उपा. भुवनचन्द्र	१६१
पूरवणी	मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय	१६३
एक शोधपत्र विषे संशोधन	विजयशीलचन्द्रसूरि	१६५
नवां प्रकाशनो		१६७
आवरणचित्र–परिचय		१६८

सम्पादन

श्रीमुनिचन्द्रसूरि-प्रणीत
कालविचारशतक

– सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

जैन शासनमां द्रव्यानुयोग तथा गणितानुयोग - अन्तर्गत जेम वस्तुतत्त्वने वर्णवता गहन अने विस्तृत महाग्रन्थो छे, तेम एक-बे नानां नानां विचारबिन्दुओने वर्णवतां सरळ नानकडां प्रकरणो पण छे. प्रस्तुत प्राकृत रचना पण कालनी गणना विशे थोडीक पायानी माहिती पूरी पाडतुं एक प्रकरण ज छे.

जोईसकरण्डग, चन्दपण्णत्ति, सूरियपण्णत्ति, बृहत्क्षेत्रसमास, बृहत्सङ्ग्रहणी व. अनेक ग्रन्थोमां कालगणना अङ्गे विस्तृत ज्ञान पीरसायुं ज छे. पण ते गम्भीर होवाथी स्थूलमति लोको समजी शकता न होवाने लीधे तेने सरल भाषामां रजू करवानो प्रकरणकर्तानो आशय छे, जे महदंशे सफल थयो छे.

अत्रे नक्षत्र, चान्द्र, ऋतु, रवि अने अभिवर्द्धित अे पांच मासनुं प्रमाण, तेनी गणतरी, अे पांच प्रकारनां वर्ष, युगगणना, अधिकमासनी उत्पत्ति, रवि-चन्द्रनी गति, क्षयतिथि आटला विषयो प्रधानपणे निरूपाया छे. आ सिवाय कालगणना अङ्गे घणुं कहेवानुं बाकी रहे छे, ते महाग्रन्थोमांथी जोई लेवानी अन्ते भलामण थई छे.

सम्पादन माटे उपयोगमां लीधेली प्रत पूज्य गुरुभगवन्तना अङ्गत सङ्ग्रहनी छे. ते उपरान्त कैलाससागरसूरिज्ञानमन्दिर - कोबामांथी पण पं. श्रीहीरेनभाई दोशीना सहकारथी आ प्रकरणनी बे हस्तप्रत सांपडी हती (नं. ०६०४४ अने नं. ३५९३०). तेमनो वाचनाना स्वल्प शुद्धीकरणमां उपयोग कर्यो छे. ते माटे संस्थाना अमो आभारी छीअे.

सम्पादन माटे वपरायेली प्रतमां मूळ गाथाओना भावोना स्पष्टीकरण माटे अनेक ठेकाणे अङ्कसङ्ख्याओ अलग रेखाओ-विभागो दोरीने आपवामां आवी छे. तेमज तेना चारे तरफना हांसियामां अनेक टिप्पणो पण कोईक अभ्यासीओ करेलां छे. आ सामग्री यथायोग्य स्थाने जोडीने अत्रे 'टिप्पण-यन्त्राणि' अे शीर्षक नीचे आपी छे.

आवां प्रकरणोमां प्राचीन गाणितिक प्रक्रियानुं तेमज तेनी प्राचीन परिभाषानुं पण बहुमूल्य ज्ञान मळतुं होय छे. अत्रे आ प्रकरणमां रजू थयेली गाणितिक

प्रक्रियाओ वाचकोनी सरळता खातर अलगथी मूकी छे. आ प्रक्रियाओने ग्रन्थ साथे मेळवी जोवाथी परिभाषानो पण आपोआप ख्याल आवी शकशे.

ग्रन्थकर्ता श्रीमुनिचन्द्रसूरि महाराज छे. मुनिचन्द्रसूरिजीना नामे अनेक कृतिओ नोंधायेली छे. तेमांथी कया मुनिचन्द्रसूरिजीनी कई कृति ते नक्की करवुं अघरुं छे. तेथी आ कृतिना कर्ता, समय व. अङ्गे संशोधन बाकी रहे छे. ते ज रीते प्रकरणकर्ताअे कोशाधिप यशोधवलनी पुत्री रुक्मिणी श्राविकाना प्रोत्साहनथी आ कृतिनी रचना करी होवानुं पुष्पिकामां नोंध्युं छे. आ यशोधवल श्रावक अने रुक्मिणी श्राविकानो विशेष परिचय पण शोधवो बाकी रहे छे.

*

कालविचारशतकगत
कालगणना

* काळनी गणना पांच प्रकारनी होय छे. ते दरेकमां दिवससंख्या जुदीजुदी होय छे.

नाम	१ मासना दिवस	१ वर्षना दिवस
नक्षत्र	$२६\frac{२१}{६}$	
चन्द्र		
ऋतु	३०	३६०
रवि		३६६

अभिवर्द्धित

* **नक्षत्रमास :**

- अश्विनी, भरणी व. २८ नक्षत्रोने चन्द्र जेटला काळमां भोगवे, तेटलो काळ १ नक्षत्रमास गणाय छे.
- **१५ समक्षेत्री नक्षत्रो :** १ अश्विनी, २. कृत्तिका, ३. मृगशीर्ष, ४. पुष्य,

५. मघा, ६. पूर्वाफाल्गुनी, ७. हस्त, ८. चित्रा, ९. अनुराधा, १०. मूल, ११. पूर्वाषाढा, १२. श्रवण, १३. घनिष्ठा, १४. पूर्वभाद्रपदा, १५. रेवती.

६ अपार्ध क्षेत्री नक्षत्रो : १. शतभिषक्, २. भरणी, ३. आर्द्रा, ४. आश्लेषा, ५. स्वाति, ६. ज्येष्ठा.

६ द्व्यर्ध क्षेत्री नक्षत्रो : १. उत्तराफाल्गुनी, २. उत्तराषाढा, ३. उत्तराभाद्रपदा, ४. पुनर्वसु, ५. रोहिणी, ६. विशाखा.

१ अभिजित्

नक्षत्रगण	न. संख्या	१ नक्षत्र क्षेत्रभाग	कुल क्षेत्रभाग	१ नक्षत्रनो चन्द्रभोगकाळ	कुल भोगकाळ
अभिजित्	१	६३०	६३०	९ २१/६७ मु.	९ २१/६७ मु.
समक्षेत्री	१५	२०१०	३०१५०	३० मु.	४५० मु.
अपार्धक्षेत्री	६	१००५	६०३०	१५ मु.	९० मु.
द्व्यर्धक्षेत्री	६	३०१५	१८०९०	४५ मु.	२७० मु.

- चन्द्र १ मुहूर्तमां ६७ नक्षत्रक्षेत्रभाग भोगवे छे. तेथी एक दिवस = ३० मुहूर्त = २०१० क्षेत्रभाग. माटे ५४९०० क्षेत्रभाग = ८१९ मु. = २७ दिवस. १ दिवसना ३० मुहूर्त = ८१० मुहूर्तना २७ दिवस. ९ मुहूर्त वधे. आना भाग थशे. तेने एक दिवसना थी भागतां, ३०थी आनो छेद उडावतां आवशे.

* **चन्द्रमास :**

- चन्द्रनी उत्कृष्ट कळा १६ होय छे. आ उत्कृष्ट कळा मात्र पूनमना दिवसे ज होय छे. त्यार बाद कृष्ण पक्षमां दरेक तिथिअे १-१ कळा घटतां घटतां

अमासना दिवसे १ कळानो चन्द्र थाय छे. त्यार बाद शुक्लपक्ष आरंभाता दरेक तिथिअे १-१ कळा वधतां पूनमे चन्द्र पुनः १६ कळानो बने छे. आम १५ तिथि कृष्णपक्षनी अने १५ तिथि शुक्लपक्षनी मळीने ३० तिथिनो महिनो थाय छे.

- १ तिथि पूरी थवानो समयगाळो दिवस छे. माटे ३० तिथि पूरी थवामां लागतो समय = २९ दिवस जेटलो थाय छे अने ते चान्द्र मास गणाय छे.
- बीजी रीते गणीअे तो - एक कलाना ६१ भाग थाय छे. माटे १५ कलाना ९१५ भाग थाय छे. अेक दिवसमां ६२ भाग पसार थाय छे. तेथी १५ कला पसार थवामां १४ दिवस लागे छे. माटे १५ कला वधवामां १४ दिवस अने घटवामां १४ दिवस, एम कुल मळीने २९ दिवसनो महिनो थाय छे.

* **ऋतुमास :**

- आमां कृष्णपक्षना १ थी १५ दिवस अने शुक्लपक्षना १ थी १५ दिवस एम ३० दिवसनो महिनो थाय छे. तेमां कोई वध-घट थती नथी. कृष्णपक्षनी एकमथी आ महिनो शरू थाय छे, अने शुक्लपक्षनी पूनमे महिनो पूरो थाय छे.

* **सूर्यमास :**

- मेष, वृषभ व. १२ राशि छे. आ राशिओनो कुल क्षेत्रभाग नक्षत्रोना कुल क्षेत्रभाग जेटलो ज छे. तेथी पूर्वे दर्शावेला ५४९०० क्षेत्रभागने १२ राशिथी भागीअे तो एक राशिना ४५७५ क्षेत्रभाग आवे.
- सूर्य एक राशिमां स्थिरता करे तेटलो काळ १ रविमास गणाय छे. सूर्य अेक मुहूर्तमां ५ क्षेत्रभाग भोगवे छे. तेथी ४५७५ क्षेत्रभाग भोगवतां लागतो

काळ = ९१५ मुहूर्त = ३० दिवस (एक मुहूर्त = प्रहर = दिवस)

* **अभिवर्द्धितमास :**

- जे वर्षमां १३ चान्द्रमास होय, ते वर्ष अभिवर्द्धित वर्ष गणाय छे. आ वर्षना कुल समयगाळाने १२ थी भागतां जे जवाब आवे ते अभिवर्द्धितमास गणाय छे.

- अभिवर्द्धित वर्षमां ३८३ दिवसो होय छे. आ राशिने सम करीअे तो दिवस आवे. आने १२थी भागवा होय तो छेदक ६२ ने १२ थी गुणी तेनाथी छेद्य संख्या २३७९० ने भागवी पडे. आम करतां जवाब आवे. आने दिवसमां फेरवतां ३१ जवाब आवे. आ अभिवर्द्धित मासनुं प्रमाण छे.

* **नक्षत्रादिवर्षप्रमाण :**

- नक्षत्र व. मासनी दिवससंख्याने १२ साथे गुणवाथी ते ते वर्षनी दिवस-संख्या आवे छे.

- आ माटेनी पद्धति आवी छे. पहेलां ते ते मासना दिवसोनी अपूर्णांक संख्यामां जे छेदकसंख्या छे, तेनी साथे पूर्ण दिवससंख्याने गुणवी. मळेला जवाबमां अपूर्णांकगत छेद्यसंख्या उमेरवी. आ संख्याने पछी १२ साथे गुणी तेनो छेदकसंख्याथी भागाकार करवो. आम करवाथी मळतो जवाब ते ते वर्षनी दिवससंख्या सूचवे छे.

- नक्षत्रमास— x १२

चान्द्र मास — $x\ १२ = \frac{२१९६०}{६२} = ४\ ४\frac{१२}{६२}$

ऋतु मास — ३० x १२ = ३६०

रवि मास — x

अभिवर्द्धित मास — $३१\frac{१२१}{१२४} = \frac{३८४४}{१२४} + \frac{१२१}{१२४} = \frac{३९६५}{१२४}$ x १२ =

$\frac{४७५८०}{२२४} = २\ ८\frac{८८}{२}\ = \frac{}{२२४}\ २\frac{४४}{}८२\ \ २\ २$

- रवि वर्षनी बीजी रीते पण गणतरी थई शके छे. सूर्य १ मुहूर्तमां ५ नक्षत्र-क्षेत्रभाग पसार करे छे. आ प्रमाणे जोईअे तो —

नक्षत्रगण	न. संख्या	१ नक्षत्र क्षेत्रभाग	कुल क्षेत्रभाग	१ नक्षत्रनो रविभोगकाळ	कुल भोगकाळ
अभिजित्	१	६३०	६३०	$४\frac{१}{५}$ दि.	$४\frac{१}{५}$ दि.
[illegible]	१५	२०१०	३०१५०	$१३\frac{२}{५}$ दि.	२०१ दि.
अपार्धक्षेत्री	६	१००५	६०३०	$६\frac{७}{१०}$ दि.	$६\frac{७}{१०}$ दि.
द्व्यर्धक्षेत्री	६	३०१५	१८०९०	$२०\frac{१}{१०}$ दि.	$१२०\frac{३}{५}$ दि.
कुल	**२८**	**—**	**५४९००**	**—**	**३६६ दिवस**

आ रीते सूर्यने तमाम नक्षत्रोने भोगवतां ३६६ दिवस थाय छे. ते रविवर्ष गणाय छे.

* **युगगणना :**

- पांच वर्षनो एक युग थाय छे. तेमां अनुक्रमे १. चन्द्र, २. चन्द्र, ३. अभिवर्द्धित, ४. चन्द्र, ५. अभिवर्द्धित अेम ५ वर्ष होय छे. तेना दिवसो कुल मळीने ३५४ + ३५४ + ३८३ + ३५४ +

$३८३ \frac{४४}{२} = १८२८ \quad = १८३०$ थाय छे.

- अेक युगमां पूर्वोक्त नक्षत्रादि मास केटला पसार थाय तेनी गणतरी आ रीते थाय छे. पहेलां ते ते मासनी अपूर्णांक संख्यामां जे छेदक अंक छे, तेनाथी पूर्ण दिवसोने गुणी तेमां छेद्यसंख्या उमेरवी. (आने सवर्णीकरण कहेवाय छे.) त्यारबाद युगदिनसंख्या १८३० ने पूर्वोक्त सवर्णीकृत संख्याथी भागतां आवतो जवाब एक युगवर्षनी ते ते मासनी संख्या दर्शावे छे.

- नक्षत्र मास—

चान्द्र मास —

ऋतु मास —

रवि मास —

अभिवर्द्धित मास —

$$३१\frac{१२१}{१२४} = \frac{३८४४}{१२४} + \frac{१२१}{१२४} = \frac{३९६५}{१२४} \rightarrow$$

- आम, १ युगमां माससंख्या - नक्षत्र - ६७, चन्द्र - ६२, ऋतु - ६१, रवि - ६०, अभिवर्द्धित - ५७

- आ ज वातने जुदी रीते जोईअे तो १ युगनी दिनसंख्याने ते ते मासनी संख्याथी भागतां ते ते मासना दिवसोनुं प्रमाण मळी रहे छे. जेमके

नक्षत्रमास व. आमां अभिवर्द्धितमासनी गणतरी अघरी

होवाथी प्रकरणमां देखाडाई छे. ते आम छे —

(३६६थी अपवर्तना करतां)

*** अधिकमासनी उत्पत्ति :**

- चन्द्रमास करतां सूर्यमास दिवस अधिक छे. तेथी ३० महिने

x ३० = दिवस वधे छे. आ दिवसोनो १ अधिक चान्द्रमास थाय छे. अने आवुं १३ मासवाळुं वर्ष 'अभिवर्द्धित' तरीके ओळखाय छे. आ अधिकमास उमेरातां चान्द्र अने रवि कालगणना पुनः अेक बिन्दुअे भेगी थाय छे.

[illegible] ३० महिने अेक अेम कुल २ अधिकमास आवे छे. युगनी शरुआत आषाढ महिनाथी थाय छे. तेथी तेनाथी ३० महिने अधिक गणतां युगमध्ये पोष अने युगान्ते आषाढ बे-बे वखत आवे छे.

- निशीथसूत्रनी पीठिकामां अधिकमासने अकाल तरीके गणाव्यो छे. तेथी ते अयन-वर्ष-चातुर्मास व.नी गणतरीमां उपयोगी बनतो नथी.

*** रवि-चन्द्रनी गति :**

- सूर्यनी १ मुहूर्तमां जे गति थाय तेना करतां चन्द्रनी गति ६२ क्षेत्रभाग जेटली ओछी होय छे. अेटले एक दिवसमां चन्द्र सूर्यनी अपेक्षाअे १८६० क्षेत्रभाग जेटलो पाछळ पडे छे. आ रीते गणतां २९ दिवसमां ते सूर्य करतां कुल ५४९०० नक्षत्रक्षेत्रभाग जेटलो पाछळ थाय छे.

- चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रो व. तमाम ज्योतिर्पिण्डो बे बे छे. ते बधां मेरु पर्वतनी परिक्रमा करे छे. आ परिक्रमामार्ग पण ५४९०० x २ क्षेत्रभाग जेटलो छे.

आ मार्गना जे बिन्दुअे अेक सूर्य होय तेनी बराबर सामा बिन्दुअे बीजो सूर्य होय छे.

- अमावस्याना दिने सूर्य-चन्द्र साथे (अेक बिन्दुअे) होय छे. बंनेनुं ते बिन्दुथी साथे प्रस्थान थाय तो चन्द्र करतां सूर्य दरेक मुहूर्ते ६२ भाग आगळ सरकतां सरकतां २९ दिवसे बराबर अर्धपरिक्रमामार्ग = ५४९०० क्षेत्रभाग जेटलो आगळ नीकळी जाय छे. आ समये तेनी सामेनो सूर्य पेला पाछळ पडी गयेला चन्द्र साथे भेगो थाय छे. अने बीजी अमावस्या सर्जाय छे. आ ज गतिअे आगळ वधतां पेलो पहेलो सूर्य बीजा २९ दिवस जतां बीजो अर्धपरिक्रमामार्ग आगळ निकळीने त्रीजी अमावस्याअे पुनः चन्द्र साथे भेगो थाय छे.
- सूर्यनी अेक दिवसनी गति ५४९०० क्षेत्रभाग जेटली छे, ज्यारे चन्द्रनी ५३०४०. तेथी सूर्यनी ५४९०० x २ = १०९८०० क्षेत्रभागनी २९ परिक्रमा थाय, त्यारे चन्द्रनी २८ परिक्रमा ज पूरी थाय छे, अने चन्द्र-सूर्य भेगा थाय छे. आ समयगाळो लगभग बे महिना जेटलो छे, तेथी सूर्यनी १ वर्षमां १७७ करतां अधिक प्रदक्षिणा थाय छे, ज्यारे चन्द्रनी १७१.

* **अवमरात्र (क्षयतिथि) :**

- अेक तिथिनुं काळप्रमाण दिवस जेटलुं छे. तेथी दररोज अेक आखी तिथि अने बीजी तिथिनो अेक भाग - आटलुं पसार थाय छे. आ प्रमाणे गणतरी करतां ६१ मा दिवसे ६२मी तिथि समग्रपणे अन्तर्भाव पामतां ते 'क्षयतिथि' गणाय छे.
- आ क्षयतिथि दर ६२मा दिवसे आवे छे. तेथी ३६६ दिवस प्रमाण रविवर्षमां कुल ६ क्षयतिथि थाय छे.
- आ क्षयतिथि आषाढ, भादरवो, कारतक, पोष, फागण अने वैशाख महिनाना वद पखवाडियामां आवे छे.

*

कालवियारसयं

नमिअ जिअकालकीलं, कालसमुप्पन्नघणगहिरघोसं ।
वीरं जएक्कवीरं, कालविआरं पवक्खामि ॥१॥

कालो अद्धारूवो, माणुसलोगम्मि सो मुणेअव्वो ।
सूरकिरिआभिवंगो, समयावलियाइभेउ त्ति ॥२॥

तत्थ किल पंच मासा, हवंति नक्खत्तमाईआ ।
तेसिं पत्तेअमिणं, कमेण माणं निसामेह ॥३॥

सत्तावीसं च दिणा, तिसत्त सत्तट्ठिभाग नक्खत्ते ।
चन्दो अउणतीसं, बिसट्ठिभागो य बत्तीसं ॥४॥

उउमासो तीसदिणा, आइच्चो तीस होइ अद्धं च ।
अभिवड्ढिअमासो पुण, चउवीससएण छेएण ॥५॥

भागाणिगवीससयं, तीसा एगाहिआ दिणाणं च[१] ।
जह एए निप्फत्तिं, लहंति तह भन्नइ इयाणिं ॥६॥

नक्खत्तऽट्ठावीसा, अस्सणिभरणाइआ जणपसिद्धा ।
ताण ससिभोगकालो, हवइ स नक्खत्तमासो त्ति ॥७॥

इह पनरस समखित्ता, नक्खत्ता ते इमे वियाणाहि ।
अस्सिणि१ कित्तिअ२ मिगसिर३, पुस्स४ महा५ फुग्गणी६ हत्था७ ॥८॥

चित्ता ८ ऽणुराह ९ मूला १०, आसाढा ११ सावणो १२ धणिट्ठा १३ य ।
भद्दवया १४ तह रेवई १५ - मे पुण छच्चेवऽवड्ढखित्ताओ ॥९॥

सयभिसया १ भरणीओ २, रुद्दा ३ अस्सेस ४ साइ ५ जिट्ठा ६ य ।
एवं दिवड्ढखित्ता, छच्चेए उत्तरा तिन्नि ३ ॥१०॥

पुणवसु ४ सगड ५ विसाहा ६, अभिजी पुण एसि अन्नहा होइ ।
तिन्ह वि नक्खत्तगणा-णऽवेक्खेउं खित्तभागं ति ॥११॥

तहाहि —

छच्चेव सया तीसा ६३०, भागाणं अभिजे खित्तविक्खंभो ।
पंचोत्तरं सहस्सं, अवड्ढखित्ताण पत्तेअं[२] १००५ ॥१२॥

भागाण दो सहस्सा, दसुत्तरा हुंति सरिसखेत्ताणं[३] २०१० ।
तिन्नि सहस्सा पनरस, य चेव भागा उ सेसाणं[४] ३०१५ ॥१३॥
एगससिरिक्खखेत्तं, चउप्पन्नसहस्स नवसए काउं ५४९०० ।
भागाण जहाभणिअं, तओ विभज्जिज्ज भागगणं ॥१४॥
समखित्तेसुं तीसा ३०, पणयालीसा ४५ दिवड्ढखित्तेसु ।
पन्नरस १५ अवड्ढखित्तेसु, होइ भोगो मुहुत्ताणं ॥१५॥
अभिजिए नव मुहुत्ता, सगसट्ठीभाग सत्तवीसाउ ।
सव्वो वि एस कालो, ससिभुत्तो रिक्खमासो त्ति ॥१६॥
भागाण सत्तसट्ठी ६७, रिक्खगयाणं ससी मुहुत्तेण ।
चरइ दिवसेण सहसे, दो पुण दसभाग अब्भहिए २०१० ॥१७॥
एगदिवसस्स भोगेण २०१०, भाइए रिक्खभागरासिम्मि ५४९०० ।
उडुमासे तीसाए, ओअट्ठे अंसछेआणं ॥१८॥

भणिओ नक्खत्तमासो ॥

जो पुण चंदमासो, निप्फज्जइ सो तिहीण तीसाए ।
तिहिमाणं पुण ससिणो, खयवसओ वुड्ढिवसओ अ ॥१९॥
सोलसभागे काऊण, उडुवइं हायएऽत्थ पन्नरसं ।
तत्तिअभागे अ पुणो, वड्ढइ सो सुक्कपक्खेण ॥२०॥
भागखयवुड्ढिकालो, बासट्ठि विभाइअंमि[५] दिणकाले ।
जे इगसट्ठी भागा, तत्तुल्लो होइ नायव्वो ॥२१॥
इगसट्ठी जे भागा, भणिआ माणं तिहीए पुव्वमिह ।
ते तीसाए गुणिआ, भइआ बासट्ठिछेएणं ॥२२॥
लद्धं इगुणतीसं, दिवसा अंसा बिसट्ठि बत्तीसं ।
इत्थं तीस तिहीओ, एसु च्चिअ चंदमासु त्ति ॥२३॥
अहवऽन्नहा भणिज्जइ, ससिमासो तत्थ सोलस कलाओ ।
ससिणो हवंति बिंबे, मुत्तु कलं सोलसिं तासु ॥२४॥
इक्केक्का इगसट्ठी, भागा किज्जंति पनरसकलासु ।
जाया पंचदसुत्तर-नवसयभागा तओ ताण[६] ९२५ ॥२५॥
बासट्ठी बासट्ठी, दिवसे दिवसे उ सुक्कपक्खस्स ।
जे परिवड्ढइ चंदो, खवेइ ते चेव कालेण ॥२६॥

इअ एगा चंदकला, एगो तस्सेगसट्ठिभागो अ ।
दिवसेणं वड्ढन्ती, हायन्ती भागा तओ सव्वे ॥२७॥
दिणचउदसगेणं स-त्तचत्तबासट्ठिभागअहिएण ।
सुज्जं(ज्झं?)ति खिज्जंति अ, पक्खदुगेणेस ससिमासो ॥२८॥
कसिणपडिवयपयट्टो, सिअपक्खऽन्तिमतिहीए निम्माओ ।
एसो रिउमासो पुण, सव्व च्चिअ तीसयं दिवसा ॥२९॥

भणिआ चंदमास-रिउमासा ॥छा॥

मेसाईया बारस, रासी रिक्खाइं तत्थ अडवीसा ।
सवणुत्तरसाढंत-ग्गओ उ अभिजी जणे रूढा(ढो?) ॥३०॥
पुव्वनिरूविअणक्ख-त्तखित्तभागाण ५४९०० रासिसंखाए ।
भइआ दुवालसल-क्खणाए लब्भइ तओ एअं ॥३१॥
पणयालसया पणस-त्तरी अ नक्खत्तखेत्तभागाणं ।
इक्केक्करासिमाणं, एसो रविभोगकालो सो ॥३२॥
तीसं दिवसा अद्धं, दिणस्स एसो अ सूरमासो त्ति ।
भागे पंच मुहुत्ते, अवट्ठिए भुंजई सूरो ॥३३॥
दिवसेण दिवड्ढसयं, एवं भुंजंति सूर मासेणं ।
मेसाईरासीणं, भागा सव्वे वि पत्तेअं ॥३४॥

ततश्च —

पुव्वत्तरासिभागा ४५७५, दिणभोगेणं १५० जया विभज्जंति ।
तइआ तीस दिणाइं, लद्धाइं अखण्डरूवाइं ॥३५॥
जो पणसत्तरिरूवो, अंसो ७५ छेओ दिवड्ढसइओऽत्थ १५० ।
तेसि पणसत्तरीए, उव्वट्टे लब्भइ दिणद्धं[७] ॥३६॥

भणिओ आइच्चमासो ॥छा॥

जम्मि वरिसम्मि तेरस, ससिणो मासा हवंति सो वरिसो ।
बारस भाए कज्जइ, अभिवड्ढिअमासु सो होइ ॥३७॥

तथाहि —

तेरससिमासेसु, तेसीआ सय दिणाण तिन्नेव ।
चोआलीसं भागा, बासट्ठि सवन्निए तम्मि[८] ॥३८॥

तेवीस सहस सत्त य, सयाइं णउआइं हुंति अंसाणं[९] ।
बारसभइअे एअम्मि, होइ अहिमासगपमाणं ॥३९॥

द्वादशभिर्भजनाय यथा विधीयते तथोपायेन दर्श्यते[१०]—

तत्थ वि बारसगुणिअं, बासट्ठिं काउं कुणह उव्वट्टं[११] ।
छक्केण तओ दुन्नि वि, रासीणं होइ इअ माणं ॥४०॥
चउवीससयं छेओ, इगुआलसयाइं पंचसट्ठाइं ।
अंसाणं[१२] निअच्छेए[१३]-ण भाइए लद्धु अहिमासो ॥४१॥
परूविओ अहिमासो ॥छ॥
एए पंच वि मासा, बारसगुणिआ जया विहिज्जंति ।
हुंति तओ वरिसाइं, तन्नामाइं पुढो पंच ॥४२॥
तिन्नि सय सत्तवीसा, दिणाण सगसट्ठिभाग इगवन्ना[१४] ।
तिन्नि सया चउप्पन्ना, बारस बासट्ठिभागा य[१५] ॥४३॥
सट्ठा तिन्नेव सया[१६], ते च्चिअ छहि समहिआ जहाकमसो[१७] ।
नक्खत्त-चंद-रिउ-सूरिआण संवच्छरपमाणं ॥४४॥
तिसिआ तिन्नि सया चुआ-लीसा बिसट्ठिभागाण ।
अभिवड्ढिअसंवच्छर-माणमिणं दोहि अ पवट्टे[१८] ॥४५॥
चत्तारि मासरासी, भागजुआ एत्थ ते गुणेऊण ।
निअछेएण सयंसे, करेत्तु बारस गुणे कुज्जा ॥४६॥
तत्तो हरिज्ज भायं, निअछेएहिं समागयन्तम्मि[१९] ।
तं होइ वरिसमाणं, जं भणिअं पुव्वमेव इहं ॥४७॥
एएसु सूरवरिसे, पन्नवणा किंचि अन्नहा इन्हि ।
सीसाणं दंसिज्जइ, मइविउपायणकए एसा ॥४८॥
जे रिक्खखित्तभागा, पुव्वं भणिआ दिणस्स भोगेणं ।
सड्ढसयलक्खणेणं १५०, भइआ णं तेसि लद्धमिणं ॥४९॥
चत्तारि दिणा एगो, दिणपंचमो मुहुत्तछक्कं[२०] ।
एसो रविणो भोगो, नायव्वोऽभीजिरिक्खस्स ॥५०॥
जे पुण अवड्ढखित्ता, भोगो तेसिं दिणाणि छच्चेव ।
सत्त दसंसो दिवसस्स, ते मुहुत्ताण इगवीसा[२१] ॥५१॥

समखित्ताणं तेरस, दिवसा तह दोन्नि पंच भागाओ[२२] ।
बारस ते उ मुहुत्ता, दिवड्ढखित्ताण पुण एअं ॥५२॥
वीस दिणा तह एगो, दसभागो तत्थ तिन्नि उ मुहुत्ता[२३] ।
बीअन्तिमेसु पन्नरस १५, सेसदुगे तीस उव्वट्टो ॥५३॥
सव्वो वि एस कालो, दिणरूवो तह मुहुत्तरूवो अ ।
मिलिओ जायइ रवि-वच्छरो त्ति जो वन्निओ पुव्वं ॥५४॥ छ ॥
चन्दे १ चन्दे २ अभिव-ड्ढिए अ ३ चन्दे ४ अभिवड्ढिए चेव ५ ।
इअ पंचवच्छर जुगं, तीसऽट्ठारससयदिणेहिं १८३० ॥५५॥
[२४]सगसट्ठि रिक्खमासा ६७, बासट्ठी चंदमास इह हुन्ति ६२ ।
इगसट्ठी रिउमासा ६१, सट्ठी पुण सूरमासा य ६० ॥५६॥
सत्तावन्नऽभिवड्ढिअ ५७, मासा एगं सयं च तेसीअं ।
ते णऊअसत्तसयभा-इअस्स अंसाण मासस्स[२५] ॥५७॥
एसा य माससंखा, निअनिअमासेहिं भाइअे संते ।
जुगकाले समुट्ठइ, मासा संखाए भइयम्मि ॥५८॥
तत्थ जया भाइज्जइ, जुगरासी रिक्खमाइमासेहि ।
तेसि सवन्ना पढमं, कज्जइ लब्भइ तओ एअं ॥५९॥
अट्ठारससयतीसा, संपुन्ना सत्तसट्ठिभागा य[२६] ।
रिक्खे ससिमासे पुण, एवइअ च्चिअ बिसट्ठंसा[२७] ॥६०॥
रिउमासो अखण्डदिणा, सो इत्थ सवन्नणा तओ नत्थि ।
इगनउअअट्ठारसया, बासट्ठंसा उ रविमासो[२८] ॥६१॥
चउवीससयंऽसाणं, एगुणवन्ना सया उ पन्नट्ठा ।
एए दिणाण भागा, विण्णेआ अहिगमासम्मि[२९] ॥६२॥
जुगदिणमाणं तत्तो, निअनिअछेअेहिं संगुणेऊण ।
विभज्जिज्जा अंसेहिं, संखा मासाण तो होइ ॥६३॥
नवरऽभिवड्ढिअमासे, पन्नुत्तरनवसयाइ अंसाणं ९१५ ।
इगुयालसया पणसट्ठि-समहिआ च्छेअ ३९६५ अंसाणं ॥६४॥
एएसिं दुन्हं पि अ, रासीणं पंचगेण ऊवट्टे ।
लब्भइ छेओ अंसो, पयंसिओ जो इहं पुव्वि (टि. २५) ॥६५॥

अथाऽनन्तरं ''मासा संखाए भइअम्मि (गा.५८)'' इत्येतद् भाव्यते –

सगसट्ठी बासट्ठी, इगसट्ठी सट्ठिमेव मासाणं ।
नक्खत्तमाइआणं, संखा एआओ जुगभागो ॥६६॥
हुन्ति तओ रिक्खाई, मासा अभिवड्ढिए विसेसो अ ।
सत्तावन्नं मासा, पुव्वं जं साहिआ भणिआ ॥६७॥
तेसि सवन्ने जाया, पणयालीसं सहस्स तिन्नि सया ।
चउरासीइ तेणउअ, सत्त सय भइअमासंसा[३०] ॥६८॥
तउ छेएण जुगदिणं[३१]-गुणे चउदस लक्खा सहस्स इगवन्ना ।
एगं च सयं नउअं १४५११९०, भइज्जंतो अंसरासीए ॥६९॥
लद्धा इगतीस दिणा, चउवन्नसहस्स दुसय छासीया ।
पणयालसहस्स सय तिग, चुलसी भइए एगदिवसंसा[३२] ॥७०॥
तेसिं छेयंसाणं, छासट्ठेहिं सएहिं तीहिं तओ ।
अपवट्टणम्मि जाया, छेअंसा अहिगमासस्स ॥७१॥
भणिआ पंच वि मासा, तेसिं संवच्छरा य इन्हं तु ।
अहिमासगउप्पत्ती, जइ होइ तहा निदंसेमि ॥७२॥
चन्दस्स जो विसेसो, आइच्चस्स य हविज्ज मासस्स ।
ते इगसट्ठी भागा, बासट्ठा तीसगुणिआ ते ॥७३॥
बासट्ठीए भइआ, हवइ स एगोऽहिमासगो इत्थ ।
तेरसमो ससिमासो, तीसा संकन्ति अन्तम्मि ॥७४॥
तत्थेगो जुगमज्झे, सो पुण पोसो दुइज्जओ होइ ।
अन्नो जुगस्स अन्तो, होइ दुइज्जो सयाऽऽसाढो ॥७५॥
एसो अकालचूलत्तणेण, भणिओ निसीहपीढम्मि ।
तो अयण-वरिस-चउमासगा य (गाण?) माणे अणुवओगी ॥७६॥
एगाएऽमावसाए, रविणो ससिणो अ दोन्ह मिलिआण ।
तयणन्तरं विउत्ताण, सुणह मिलणं जहा होइ ॥७७॥
चन्देहिं रवी सिग्घा, तत्तो सिग्घाइं हुन्ति रिक्खाइं ।
तिन्हं पि पत्थिआणं, कस्स गई कित्तिआ होइ ॥७८॥
नक्खत्तेण मुहुत्ते, मुच्चइ भागेहिं पंचहिं दिणिन्दो ।
सत्तट्ठीए मिअंको, रविणा चन्दो बिसट्ठीए ॥७९॥

एवं सट्ठि तिहीसुं, गयासु दिवसाण इगुणसट्ठीए ।
बासट्ठंसदुगेण य, सो च्चिअ ससिणो रवी मिलइ ॥८०॥

तहाहि –

एगेण मुहुत्तेणं, बासट्ठीए विमुच्चई चन्दो ।
रविणा दिवसेण पुणो, सट्ठऽट्ठारसयंसेहिं ॥८१॥

ततश्चाऽष्टादशभिः षष्ट्यधिकैः शतैः ५४९०० परस्य राशेर्भागे हृते अंशानां च त्रिंशता अपवर्तने इदं –

इगुणतीसदिणेहिं, बत्तीसाए बिसट्ठिभागेहिं ।
चउप्पन्नसहस्सा नव-सयभागेहिं मुच्चई चन्दो ५४९०० ॥८२॥
एवं बीआएऽमावसाए, रविणा दुइज्जएण ससी ।
जुज्जइ तावइएसुं, गएसु पुण रविअभागेसु ५४९०० ॥८३॥
सो च्चिअ ससिणो सूरो, मिलेइ एवं च दोहिं खित्तेहिं ।

यद्येकेन दिनेनाऽष्टादशशतानि षष्ट्यधिकानि लभ्यन्ते तदा चन्द्रमासेन किमिति त्रैराशिकन्यासैः[३३], आद्यन्तयोरित्यादिना लब्धानि चतुःपञ्चाशसहस्राणि नव-शताधिकानि ।

रिक्खाणमइगएहिं, रविससिणो ते च्चिअ मिलन्ति ॥८४॥ छा॥
चन्दस्स य सूरस्स य, सममेव य पत्थिआण वरिसम्मि ।
जावइआ सुरगिरिणो, परिमाणा हुन्ति ते वुच्छं ॥८५॥
बारससुऽमावसासुं, बारस बासट्ठिभागअहिआइं ।
चउप्पन्न अंगुलाइं, तिन्नि सयाइं दिणाण भवो ॥८६॥

एतानि च चन्द्रमासस्य द्वादशभिर्गुणने जायन्ते[३४] ।

दोहिं दिवसेहिं म-ण्डलपूरो सूरस्स होइ एगस्स ।
सत्तुत्तरसयमहिअं, हवन्ति ते एगवरिसेणं[३५] ॥८७॥

एतच्च पूर्वोक्तदिनराशेरर्द्धीकरणे जायन्ते(यते) ।

किंचूणगमणवसओ, ससिणो खिज्जन्ति सूरिअमविक्खा ।
छच्चेव मण्डलाइं, सयमेगसत्तरसओ होइ १७१ ॥८८॥

तहाहि —

चउप्पन्नसहस्स नवसय, तह भागे सूरिओ दिणे चरइ ५४९०० ।
एवं च परिरयद्धं, संजायइ एगदिवसेण ॥८९॥
बीए वि दिणे पुण इ-त्तिअम्मि कमिअम्मि परिरओ पुन्नो ।
सो पुण अट्ठसयाइं, सहस्स नव एग लक्खो अ ॥९०॥

नवशताधिकचतुःपञ्चाशत्सहस्राणि द्विगुणीकृतत्वात् ।

एवं चिअ चन्दस्स वि, संजायइ परिरओ परं ऊणो ।
सत्ततीससएहिं, वीसइं अहिगेण अंसाणं ३७२० ॥९१॥
जम्हा रविस्स चन्दो, अद्ध(सट्ठऽ)ट्ठारससएहिं ऊणगई ।
दिवसम्मि दुन्नि गुणिए, तो लब्भइ एस रासि त्ति ॥९२॥
एष राशिर्विंशत्यधिकसप्तत्रिंशच्छतलक्षणः पूर्वगाथोक्त एवेति ।
एगाए परिरयद्धं, भिज्जइ चंदस्स अमावसाए तओ ।
पडिपुन्नो दोहिं इमो, छ प्परिरय ऊणगा एवं ॥९३॥
भणिअं ससिणो परिरय-ऊणत्तं संपयं पवक्खामि ।
जह हुन्ति ओमरत्ता, वरिसे छक्कप्पमाणेणं ॥९४॥
इह हुन्ति ओमरत्तं, एगं इगसट्ठिदिवसअन्तम्मि ।
बासट्ठिमा तिही जं, खिज्जइ एवइअदिवसेहिं ॥९५॥
एवं छ ओमरत्ता, छासट्ठिसएहिं तिहिं दिवसाणं ।

आदित्यसंवत्सरेणेत्यर्थः ।

किं भणियं जं तिहीओ, वारेहिं समं न लब्भंति ॥९६॥
आसाढबहुलपक्खे, भद्दवए कत्तिए अ पोसे अ ।
फग्गुणवइसाहेसु, अ बोधव्वा ओमरत्ताओ ॥९७॥
एए कसिणपक्खे, हवन्ति न हवन्ति सुक्कपक्खम्मि ।
जत्तो बीआओ इमं, तं जाण विसेससुत्ताओ ॥९८॥
एसो कालविआरो, सिट्ठो सिद्धन्तसिद्धजुत्तीहिं ।
लोएण थूलमइणा, पुणऽन्नहा किंचि ववहरिओ ॥९९॥

सीसाणुग्गहहेउं, सिरिमं **मुणिचन्द**सूरिणा एसो ।
अच्चन्तं गम्भीरो, त्ति देसिओ पयडवयणेहिं ॥१००॥

॥ इति कोशाधिपयशोधवलपुत्रिकया रुक्मिणीसुश्राविकया प्रोत्साहितश्रीमुनिचन्द्रसूरिकृतं कालविचारशतम् ॥छ॥

टिप्पण-यन्त्राणि

१. २७ न, २९ चं, ३० ऋतु, ३० रवि, ३१ अभिवर्द्धि

२. षड्गुणं ६०३०

३. पञ्चदशगुणं १८०९० (३०१५०)

४. षड्गुणं १८०९० अभिजित् ६३० सर्वमीलने ५४९००

५. गणिते सति

६. एते द्वाषष्ट्या ह्रियन्ते, लब्धं १४, उद्धरिताः ४७, १४ द्विगुणाः पक्षद्वयसत्कत्वात् जा० २८, अपरेऽपि ४७ द्विगु० जाता ९४, तेषां ६२ हृतौ लब्धा १, कला क्षे० जा० २९, स्थिता भागाः ३२ ।

७. ३० ८. ३८३ , २९ दिवसास्त्रयोदशगुणा जाता ३८३

९. , एतद्राशेः ६२ गुणत्वे जा० २३७४६ भाग ४४ क्षे० जा०

१०. ६२ गुणा द्वादश क्रियन्ते तदा जाताः ७४४, एषां षड्भिरपवर्तनायां लब्धाः १२४, पूर्वोक्तराशेः २३७९० षड्भिरपवर्तनायां लब्धाः ३९६५

११. अपवर्तनाम्

१२. ३८३ १३. १२४ रूपेण

१४. ३२७ नक्षत्रमास २७ सप्तषष्टिगुणा क्रियन्ते जाताः १८०९, २१ भाग क्षे० जा० १८३०, एते द्वादशगुणा जा० २१९६०, एषां ६७ भागे ल० ३२७ भा० ५१

१५. ३५४ चन्द्र, अथ चन्द्रवर्षप्रमाणे २९ द्वाषष्टि गु० जा० १७९८, भा० ३२ क्षे० जा० १८३०, एषां १२ गुणत्वे जा० २१९६०, द्वाषष्ट्या हृतौ ल० ३५४ भा० १२

१६. ३६० ऋतु

१७. ३६६ आदि, ३० द्विगु० जा० ६०, भाग १ क्षे० जाताः ६१, एते १२ गु० जा० ७३२, एषां द्वाभ्यां हृतौ लब्धं ३६६, एषा रविवर्षप्रमा

१८. ३८३ ३१ एकशतचतुर्विंशतिगुणाः कृता जाता ३८४४, एषां मध्ये भा० १२१ क्षेपे जातं ३९६५, एषां १२ गुणत्वे जातं ४७५८०, अस्य राशेः १२४ हृतौ लब्धं ३८३, शेषस्य ८८ रूपस्य द्वाभ्यामपवर्तनायां लब्धाः ४४, १२४ द्वाभ्यामपवर्तनायां ल० ६२, एतदभिवर्द्धितवर्षप्रमाणम् ।

१९. १२ गुणानि २७ दिनानि २१ भागा सप्तषष्टिभिर्हृता लब्धा ३२७ , एवमन्येऽपि

२०. ४ , ६३० १५०लक्षणेन भक्ता, लब्धा दिवसाः १४(४), भागो १ मुहूर्त ६-रूपः

२१. ६ २२. १३

२३. २०

२४. १८३० युगदिनप्रमाणं ६७ गुणं जातं १२२६१०० एतेन सवर्णीकृतनक्षत्रमासेन १८३० रूपेण ह्रियते लब्धा मासाः ६७

२५. ५७ २६.

२७. २८.

२९.

३०. ५७ मासा ७९३ गुणने जाता ४५३८४

३१. १८३० युगदिनाः ७९३ छेदेन गुणिता जाता १४५११९०

३२.

३३. १, , २९ , एकैकस्मिन् दिने यदि १८६०, अत्र त्रै[रा]शिकं ६२, १८६०, १८३०, मध्यमश्चरमगुणः ६२, भक्तः ५४९००.

३४. ३५४

३५. १७७

२८६
३३ ८४

* * *

१३मा शतकनी त्रण

प्राञ्जल रचनाओ

– सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

श्रीआत्मारामजी जैन ज्ञानमन्दिर - वडोदरानी क्र. ३९नी ताडपत्र प्रतिनां त्रण जेरोक्स पानां क्यांकथी जड्यां : सम्भवतः स्व. आ. श्रीविजयसूर्योदयसूरिजी म.ना सङ्ग्रहमांथी. तेमां त्रण नवीन कृतिओ नजरे चडी, तो तेनुं शक्य सम्पादन करी ते अत्रे प्रकट करवामां आवे छे. ते पानां पर पत्राङ्क ८७ थी ९४ आंकेला हता.

१. प्रथम कृति **'महाभयहर जिनस्तव'** छे. ते नव पद्यप्रमाण छे. क्रमशः हाथी, सिंह, सर्प, अग्नि, युद्ध, बन्धन, रोग, जल – एम आठ भयोनुं निवारण जिनस्तवनाथी थाय - एवुं निरूपण आ पद्योमां थयुं छे. भक्तामरस्तोत्रनी 'श्च्योतन्मदाविल०' थी लई 'मत्तद्विपेन्द्र०' सुधीनी गाथाओनुं सहज स्मरण थाय. एम लागे छे के ते समयमां आवां भयहर पद्यो रचवानी व्यापक परम्परा हशे.

आना कर्ता, अन्तमां लख्या प्रमाणे, वादीन्द्र धर्मघोषसूरिना शिष्य हर्षचन्द्रसूरि छे. वादीन्द्र धर्मघोषसूरि विषे 'जैन परम्परानो इतिहास'मां नोंधायेली वातो आ प्रमाणे छे : १२ मा शतकमां तेमनो सत्ताकाळ छे. ते धर्मसूरि नामे पण ओळखाता. अम्बिकादेवीनुं वरदान तेमने मळेलुं. तेओ छ घडीमां ५०० श्लोको कण्ठे करता. अनेक वादोमां जीतवाने कारणे ते 'वादीन्द्र' तरीके ख्यात हता. तेमणे 'धर्मकल्पद्रुम' (११८६) नामे प्राकृत ग्रन्थ तथा 'गृहिधर्मपरिग्रहप्रमाण'नी रचना करी छे. तेमणे नहार, सुराणा, सांखला, खटोर आदि १०५ ओसवाल-गोत्रो तथा ३५ श्रीमालीनां गोत्रो नवां प्रवर्ताव्यां हतां. तेमनो गच्छ ते धर्मघोषगच्छ अथवा सुराणागच्छ कहेवायो. कालांतरे ते गच्छनां ते गोत्रो तपागच्छने मानता थया. हर्षचन्द्रसूरिनो स्वतन्त्र परिचय उपलब्ध थतो नथी.

२. बीजी कृति 'अष्टप्रकारी जिनपूजानां काव्यो' छे. ते समयमां अष्टप्रकारी पूजा जे रीते प्रचलित हती ते क्रम अहीं सचवायो छे. गन्ध, पुष्प, धूप, अक्षत, नैवेद्य, जल, फल, दीप. जलपूजामां पण जल भरेलो कलश भगवान समक्ष स्थापवानो ज निर्देश छे, प्रतिमा पर ते जल ढोळवानुं नथी. ते समये प्रवर्तता आवा क्रमने कारणे प्रतिमाने रोज दूध-पाणीथी न्हवडाववानी न होवाथी प्रतिमा गंदी-

मेली-चीकणी-वासी गन्ध धरावती नहि थती होय. कदाच एटले ज ११मा-१२मा वगेरे शतकनां बिम्बो ज्यां-ज्यारे पण प्रगट थाय छे त्यारे ते एकदम स्वच्छ, ऊजळां अने जाणे ताजां ज निर्मित होय तेवां होय छे. आजनी स्वीकृत पूजा-पद्धतिमां आ शक्य नथी रह्युं.

३. त्रीजी कृति 'नवग्रहोना आह्वान'नी छे. ते पद्यात्मक नहि, गद्यात्मक छे. प्रत्येक ग्रह माटे प्रयुक्त विशेषणो कर्तानी भाषाकीय सज्जतानां-पाण्डित्यनां द्योतक बने छे. 'जिन'ना अभिषेकोत्सवमां ते काळे पण ९ ग्रहोनुं आह्वान थतुं हतुं, ते आ प्रकारनी रचना द्वारा जाणी शकाय छे.

बीजी-त्रीजी कृतिओना कर्ता कोण हशे, ते अंगे प्रतिमां कोई उल्लेख थयो नथी. बनी शके के आ बे पण हर्षचन्द्रसूरिनी ज रचना होय. अथवा अन्यत्र क्यांय ए रचनाओ मळी आवे अने त्यां कर्तानो निर्देश होय तो तेनी गवेषणा करवी घटे.

*

(१)

श्रीहर्षचन्द्रसूरिविरचितः

श्रीजिनस्तवः

तटीध्रतटताटनत्रुटितकोटिदन्तार्गलो
गलन्मदकटुक्वणद्भ्रमरडिण्डिमोड्डामरः ।
जिनेश्वर! धुरन्धरस्तरुणिमोद्धुरः सिन्धुरो
न धीरमभिधावति त्वदभिधाक्षरध्यायिनम् ॥१॥
क्षणक्षतमतङ्गजक्षरदसृक्जलप्रस्फुट-
च्छटाच्छुरितकेशरः प्रकटितस्फुरद्विक्रमः ।
विपाटिमसुखोत्कटो विकटदृष्टिदंष्ट्राङ्कुरो
हरिर्जिन! तव स्मृतेः क्रमगतोऽप्यपक्रामति ॥२॥
किरन्नतिविषाकुलस्फुरितविस्फुलिङ्गोत्करैः
करम्बितदिशा दृशा क्षरदसृक्सदृक्षार्चिषः ।
क्षितोऽपि सविधे क्षताद्दशति दन्दशूकः कथं
विषापहरणं मणिं स्मरणमर्हतां बिभ्रतः ॥३॥

रुषाऽन्यमसहन्महच्चलशिखाग्रजिह्वाशतो
जिघत्सुरिव मण्डलं झगिति चण्डरश्मेरपि ।
दवाग्निरपि धुक्षितो जिनप! मंक्षु विध्याप्यते
भवच्चरणनिर्झरस्मरणभूरिधाराम्बुभिः ॥४॥
क्वचित् कलकलोद्भटैः भटकपालकेलीकिलैः
क्वचिद् रचिततताण्डवैः करिकबन्धपृष्ठस्थितैः ।
विकीर्णदिशिपूतनैः क्व दनुवेदिकायां जिन!
त्वदंह्रिपजनं जनं जयवधूर्वृणीते स्वयम् ॥५॥
त्रुटन्ति भुजरज्जवो झटिति बन्धसज्जाः स्वयं
गलन्ति निगलाग(र्ग?)ला द्विगुणचेष्टगाढा अपि ।
जिनेश! विशरारवश्चरणशृङ्खला त्वत्स्मृते-
र्भवन्ति हतवैरिभिर्विनिहितस्य कारागृहे ॥६॥
विशीर्णसकलाङ्गुलिः क्रमणपूतिपूर्णव्रणो-
द्भ्रमद्ग्रहिलमक्षिकाक्षतकृतव्यथादुःस्थितः ।
उपैति विरवद्रुणं क्षणत एव नित्यं जिन!
त्वदीयवचनामृताच्चमरव _ रुल्लाघताम् ॥७॥
महानिह चलाहतोच्छलितवारिच्छटा(वाःछटा)च्छोटितः
प्लुतं मदहठोल्लुठज्जरठमीननिर्लोठितः ।
अमुद्रमपि माद्यति द्रढयितुं समुद्रे प्लवं
सहेति जिन! वास्तवस्तवपदस्तव(:) केवलम् ॥८॥
जिनेन्द्र! भजतामिदं तव पदारविन्दद्वयं
पुरन्दरपुरस्सरत्रिदशभूरिभूपस्तुतम् ।
दुरन्तदुरितोत्करप्रभवभाञ्जि जन्मान्यपि
द्रवन्ति किमुपद्रवे प्रसरविद्रवे विस्मयः ॥९॥

इति महाभयहरो जिनस्तवः ॥
मङ्गलमस्तु जिनशासनाय ॥
वादीन्द्र-श्रीधर्मघोषसूरिपट्टे श्रीहर्षचन्द्रसूरिणाम् ॥

(२)

अष्टप्रकारजिनपूजाष्टकम् ॥

कास्मीरैर्मलयोद्भवैर्मृगमदैः कर्पूरपूरैः परै-
र्गन्धैर्गन्धविलुब्धमत्तमधुपश्रेणीभिरासेवितैः ।
कल्याणैकमहोदधेर्जिनपतेः सद्भक्तिरोमाञ्चितः
पूजां गन्धवतीं करोमि नितरां स्वर्गापवर्गेच्छया ॥१॥ गन्धपूजा ॥
मन्दारैः सिन्धुवारैः सुरभिशतदलैः पारिजातैरशोकैः
पुन्नागैर्नागकुन्दैर्विचकिलबकुलैश्चम्पकैर्जातिपत्रैः ।
कल्हारैः काञ्चनारैः सुरभिसुमनसैर्गन्धलुब्धालिश्लिष्टै(?)-
र्भक्त्या पादारविन्दं भवभयमथनं पूजयामो जिनस्य ॥२॥ पुष्पपूजा ॥
सद्गन्धद्रविणप्रयोगरचिता(तं) स्वर्गप्रियं चूर्णितं
सत्कृष्णागुरुकुन्दुरुष्कसहितं वह्नौ परिक्षेपितम् ।
गन्धोत्कर्षविलुब्धषट्पदकुलव्यालोलधूमोत्करं
धूपं तीर्थकृतः प्रमोदवसतेरुद्वाहयाम्यादरात् ॥३॥ धूपपूजा ॥
सच्छुभ्रैः कान्तिमद्भिः शशिकरनिकरोद्भासिभिर्दुग्धवर्णै-
र्गन्धाढ्यैरग्रपूर्णैर्मधुलिहपटलोद्भ्रान्तिझात्काररम्यैः ।
अन्तःसारैः पवित्रैर्जननयनमनोहारिभिः पावनात्मा
कुर्वेऽहं लोकबन्धोः क्रमकमलपुरस्तन्दुलैः स्वस्तिकाद्यम् ॥४॥ अक्षतपूजा ॥
सद्गन्धोद्भुरसर्पिषा परिमितं पक्वं नवान्नं परं
पक्वान्नं परमान्नखण्डसहितं दध्याज्यदुग्धैर्युतम् ।
भक्त्या तीर्थपतेर्जिनस्य पुरतो नैवेद्यमत्यद्भुतं
सर्वोपद्रवहारि विस्मयकरं यच्छामहे(?) श्रेयसे ॥५॥ नैवेद्यपूजा ॥
स्वर्न्नादेयैः सरै(रे?)वैः सुरभिसुमनसैर्वासितैः कान्तिमद्भि-
र्दुग्धाम्भोधिप्रसूतैः विधुकरधवलैः पावनैः स्वच्छशीतैः ।
शस्वल्लोकैकभर्तुः क्रमकमलपुरो वारिभिः पूरयित्वा
हैमं कुम्भं विधास्ये स्मितकमलमुखोद्भासितं भूरिशोभम् ॥६॥ जलपूजा ॥
सच्छ्रीकान् स्वर्णवर्णान् बहलपरिमलालीढमत्तालिमालान्
सद्यो वृक्षप्रमुक्तान् सरसरसभृतान् वृत्तवृन्तोपयुक्तान् ।

अव्यङ्गान् पत्रपूर्णान् विविधसुरवधूदत्तहस्तान् मनोज्ञान्
भक्त्या लोकैककर्तुः क्रमयुगलपुरो ढौकयामः फलादीन् ॥७॥ फलपूजा ॥
मिथ्यात्वध्वान्तराशेर्नवतरणिनिभं श्रेयसां धाम चित्रं
मित्रं सन्मुक्तिलक्ष्म्यास्तरुणमणिशिखासोदरं भाप्रभूतम् ।
रम्यं विश्वैकभर्तुश्चरणयुगपुरः प्राज्यपूर्णं मनोज्ञं
संसाराम्भोधिभीताः परमविनयतो बोधयामः प्रदीपम् ॥८॥ दीपपूजा ॥

पूजाष्टकवृत्तानि ॥

□

(३)

श्रीनवग्रहाह्वाननम् ॥

ॐ तरुणोग्रतरकरविसरप्राग्भारप्रहि(ह)ताशेषदोषतमस्काण्डाडम्बरं विविधनमदमर-मुकुटतटकोटिहठघटितसुखसद्मपदपद्मपीठलुठन्मन्दारपुष्पप्रकरं जिनाभिषेकोत्सवे **सूर्यदेव**माह्वानये ॥१॥

ॐ अमितहरहसितघनदुग्धदधिपिण्डनवशङ्खवरहंसमणिहारनवतारसुरश(स)रित्कल्लोल-सद्यशःप्रसरसोदरं निस्सीमपवित्रचित्रनक्षत्रमण्डलीपुरस्सरखेचराधीश्वरं शिशिरमयूषं जिनाभिषेकोत्सवे **चन्द्रदेव**माह्वानये ॥२॥

ॐ वरदरदजपकुसुमबन्धूककिंकिल्लिनवकुसुमसिन्दूरसन्ध्याभ्रतडिल्लेखासमान-स्फुरदनलक्रूरनेत्रज्वलदनलज्वालाजालजटिलं रक्तालङ्कारं दरदलितपद्ममणि-किरणप्रवालचञ्चत्करकमलकलिताऽक्षमालकमण्डलुं जिनाभिषेकोत्सवे **मङ्गलदेव**माह्वानये ॥३॥

ॐ प्रवरसिद्धगन्धर्वामरखचरकिन्नरेन्द्रनमदमरशिरः स्रस्तामन्दमन्दारमकरन्दलुब्ध-मत्तालिकुललुठितपादपीठस्थलं नाशापुटोभर्यात(?)प्रदत्तपवित्रनेत्रेन्दीवर-सरोजासनस्थाङ्गीकृतज्ञानमुद्रोत्तरयोगीन्द्रं जिनाभिषेकोत्सवे **बुधदेव**माह्वानये ॥४॥

ॐ प्रवरप्रणतसुरविसरशिरोरत्नसंघट्टघृष्टचरणनखकिरणनिकरविरचितेन्द्राखण्डकोदण्डं

विविधबुधप्रभाप्रध्वस्तास्तोकतमश्चक्रं स्वर्णवर्णप्रभापूर्णत्रिविष्टपं कमण्डल्वक्षमालोपेतं जिनाभिषेकोत्सवे **बृहस्पतिदेव**माह्वानये ॥५॥

ॐ शरदभ्रशुभ्राभ्रोदरशशधरकरनिकरसोदारहारनीहारक्षीरनीरडिण्डीरकाशपुष्प-प्रकाशसंकाशयशःप्रसरसोदरं अनेकदक्षयक्षरक्ष[कीना]शाक्षौहिणीनमदखिल-मौलिमालालङ्कृतचारुचरणयुग्मं शुभ्रनेपथ्यं जिनाभिषेकोत्सवे **शुक्र**माह्वानये ॥६॥

ॐ सजलजलदनीलालिपटलगवलघनकज्जलतमालश्यामलं करतलपरिकलित-चण्डाखण्डलोहदण्डाघातघातितसकलविश्वान्तर्वर्त्तिप्राणिचक्रं रक्तान्तर्वक्रोग्रक्रूरनेत्रं जिनाभिषेकोत्सवे **शनैश्चरदेव**माह्वानये ॥७॥

ॐ सजलजलधराटोपदोषातमस्तोमभ्रमद्भ्रमरसोदरं अभिनवेन्दुकलाकोटिविकट-नतोन्नतदंष्ट्राकरालव्यात्तवक्त्रवि_[जि]ह्वा(?)गलल्लोललालानिकरं जिना-भिषेकोत्सवे **राहुदेव**माह्वानये ॥८॥

ॐ कृशानो _ _ष्ठा(?)लिव्यालगवलाञ्जनमरकतेन्द्रनीलहरगलतमालध्वान्तव्यूहप्रतिमं कालिन्दीपयःसोदरोदारभुजगेन्द्रस्फारफणातपत्रं चलन्नूपुरारावकिङ्किणीरवोत्ताल-व्याकुलितासुरसुन्दरीवृन्दवन्दितोदारस्फारचरणपीठं मेचकाम्बराभरणभूषितविग्रहं जिनाभिषेकोत्सवे **केतुदेव**माह्वानये ॥९॥

इति नवग्रहाह्वाननम् ॥

* * *

अहो, वर बोलि

— सं. विजयशीलचन्द्रसूरि

आ एक विलक्षण रचना छे. तेमां छूटा छूटा १६ श्लोको छे — एक ज छन्दमां, अने ते श्लोकोमां विषय परत्वे कोई एकसूत्रता नथी. दरेक श्लोक पछी तेनो अर्थ के विस्तरार्थ लखवामां आवेल छे, तेनो प्रारम्भ ''अहो वर'' एवा शब्दोथी थाय छे. तेमज आ रचनानो छेडो ''अहो वरबोलि'' एवा शब्दोथी आवे छे. एटले आने तेज नाम/शीर्षक आप्युं छे. १५मा सैकामां लखायेला जणाता ३ ह.लि. पत्रोमां आलेखायेल आ रचनाना कर्ता कोण ते जाणी शकाय तेम नथी. परन्तु लगभग दरेक श्लोकना विवरणमां ''अम्हारइ कुलि'' एवो प्रयोग जोवा मळे छे ते परथी कोई विद्वान श्रावक-गृहस्थनी आ रचना होय तेम लागे छे.

श्लोक क्र. १, २, ११मां आदिनाथनी स्तुति छे, ते पण शत्रुञ्जयमण्डन आदिनाथनी; ३मां श्री देवसुन्दरसूरिगुरुनी; ४, १०, १३मां नवकारमन्त्रनी; ५, ८, १५मां सोमसुन्दरसूरिनी; ६, ७ मां सामान्य जिननी; ९ मां भरत चक्रवर्तीनी; १२मां पार्श्वनाथनी; १४मां गौतमस्वामीनी; अने १६मां महम्मद पादशाहनी स्तुति थई छे.

प्रथम श्लोकमां ज 'कुलेऽस्मदीये-अम्हारइ कुलि' पद छे, जे सर्वत्र समजी लेवानुं छे. श्लोकमां भले आदिनाथनुं ज नाम छे, पण विवरणमां आदिनाथ-शान्तिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-वर्धमान ए पांचे जिननां नामो मङ्गलरूपे गुंथायां छे. तेमां शत्रुञ्जय, रैवतक, झीरापल्लीना उल्लेख ध्यानार्ह छे. ए ज रीते बीजा श्लोकना अर्थमां पण शत्रुञ्जयमण्डन युगादिदेव अने गिरिनारतीर्थे नेमिनाथनो उल्लेख थयो छे. श्लोक ३मां देवसुन्दरसूरि माटे ''अम्हारा कुलि क्रमागत गुरु'' लेखे ओळखाववामां आव्या छे. अर्थमां तेमने माटे लखायेलां विशेषणो गौरवास्पद छे, तो साथे ज्ञान-सागरसूरिनुं पण नाम लख्युं छे.

पांचमो श्लोक सोमसुन्दरसूरिनी स्तुतिरूप होवा छतां, तेना अर्थमां देवसुन्दरसूरिनो उल्लेख तेमज पोताना त्रण आचार्यशिष्यो साथे सोमसुन्दरसूरिनो उल्लेख करवामां आव्यो छे. विशेषणोमां भक्ति छलकाय छे. ८मा तथा १५मा श्लोकोमां पण विशेषणो वडे गुरुवर्णन भक्तिप्रद छे.

९मा श्लोकमां भरतेश्वरनी स्तुति करी छे तेना अर्थमां शास्त्रोमां वर्णवेली चक्रवर्तीनी ऋद्धिनुं आंकडा-समेत वर्णन बहु रसप्रद जणाय छे.

१६मो श्लोक ऐतिहासिक छे. तेमां गुजरातना तत्कालीन सुरत्राण-सुलतान अहमदशाह (अमदावादनो स्थापक)ना पुत्र सुरत्राण महम्मदशाह (सं. १४८९-१५०७)नुं गुणवर्णन थयुं छे. तेनुं विवरण खूब विस्तारथी लखायुं छे.

शाहना वर्णन परथी लागे छे के ते खरेखर गुणियल होवो जोईए. अतिशयोक्ति तो थती ज होय, छतां ते गाळी नाख्या पछीये शाहना केटलाक महत्त्वना गुणो विषे आमांथी जाणकारी तो मळे ज. हाथीना, अश्वना प्रकार तथा पायदळमां समाविष्ट विविध जाति-ज्ञातिना मनुष्य-सैनिकोना प्रकारनुं वर्णन पण नोंधपात्र छे. ३६ राजकुलना विवेचनमां पौराणिक-ऐतिहासिक अनेक वंशोनां नामो तेमज अनेक (८४) ज्ञातिनां नामो खूब रसप्रद जाणकारी आपी जाय छे.

शाहना शासननां मुख्य केन्द्रभूत नगरो — अणहिलवाड पाटण, अहम्मदावाद तथा खंभायत - ए त्रणना उल्लेखथी ते नगरोनी महत्ता पण समजाय छे.

पादशाह बधा धर्मो-दर्शनो प्रति समदृष्टि धरावतो हतो ते मुद्दामां छए दर्शनोनां नाम तथा तेमां कया कया धर्म-पंथोनो समावेश थाय छे तेनुं विस्तृत बयान आपणने नवी जाणकारी तो आपे ज छे, उपरांत आपणी जिज्ञासावृत्तिने उत्तेजित पण करे छे.

अनुमान थई शके के सोमसुन्दरगुरुना तेमज सुलतान महम्मदशाहना सत्ताकाळ दरम्यान ज आ रचना आलेखाई होवी जोईए.

आ प्रतिनी जेरोक्स विद्वद्वर मुनि-मित्र श्रीधुरन्धरविजयजी तरफथी प्राप्त थयेल छे. ते माटे तेमना प्रति कृतज्ञता व्यक्त करुं छुं.

*

शत्रुञ्जयक्षोणिधरावतंसः श्रीआदिनाथः सुरराजसेव्यः ।
लोकत्रयीवाञ्छितकल्पवृक्षः कुलेऽस्मदीये शिवतातिरस्तु ॥१॥

अहो, **श्रीशत्रुंजयमहातीर्थ**शिखरमुकुटायमान चतुस्त्रिंशदतिशयविराजमान सकलसुरासुरेश्वरसंसेव्यमान भव्यजनमनोरथपूरणकल्पद्रुमसमान विमलकेवलज्ञान-विलोकितसकललोकालोकसंबंधिसमस्तवस्तुस्वभाव **श्रीआदिनाथ**, विश्वत्रयशान्ति-कारक संसारसमुद्रतारक **श्रीशान्तिनाथ, रैवतकाचल**मौलिशेखरसमान सर्वातिशय-निधान यादवकुलतिलक **श्रीनेमिनाथ**, सर्वमनोवांछितदायक **श्री झीरापल्ली**-प्रमुखतीर्थनायक **श्रीपार्श्वनाथ**, दिव्यकेवलज्ञानभास्कर **श्रीवर्द्धमान**प्रमुख

चतुर्विंशतितीर्थकरदेव, भुक्तिमुक्तिप्रदायक कल्याणमालामहोत्सवमहोदय महानन्दकारक, अम्हारइ कुलि पूजनीय अर्चनीय आराध्य जयवंता वर्त्तइं ॥१॥ अहोशालिक० ॥

शत्रुञ्जये श्रीजिनमादिदेवं सुरासुरालीकृतपादसेवम् ।
कल्याणमालाकरणैकदक्षं भो वर्ण[यामी]हितकल्पवृक्षम् ॥२॥

अहो, वर**श्रीशत्रुंजयतीर्थ**मण्डन सकलाशिवखण्डन चउसठि देवेन्द्र-सेवितपद संप्राप्तपरमपद अनन्तसुखकारक युगलाधर्मनिवारण श्रीनाभिनृपनन्दन महीवलयमण्डन पञ्चशतधनुषमान उत्पन्नदिव्यकेवलज्ञान भवभयत्रायक त्रिभुवननायक देवाधिदेव इसिउ **श्रीयुगादिदेव**, अनइ **श्रीगिरनारतीर्थि** आबालब्रह्मचारि केवलज्ञानलक्ष्मीसनाथु भगवंतु **श्रीनेमिनाथ** वर्णवी तउ शोभइ ॥२ अहो० ॥

श्रीमत्तपागणनभोऽङ्गणसूर्यकल्पा विश्वोत्तमैर्गुणगणैः सकलैरनल्पाः ।
श्रीदेवसुन्दरमुनीश्वरनामधेया वर्ण्यास्त्वया सपदि सूरिवरा मदीयाः ॥३॥

अहो वर अम्हारा कुलि क्रमागत गुरु वर्णवि । किसा छइं ? जि गुरु श्रीतपागच्छगगननभोमणि सुविहितचक्रचूडामणि दुःकरतपोविधायक पंचविधा-चारप्रतिपालक छत्रीससूरिगुणसहित मोहरहित संयमश्रीलतावाल मिथ्यात्वकन्दकुद्दाल सर्वोत्तमगुणराजमान युगप्रधानसमान **श्रीसोमतिलक**पट्टपूर्वाचलतरणि निर्ममशिरोमणि भविककुम(मु)दराज श्रीतपागच्छाधिराज प्रजा(ज्ञा?)पराभूतसुरसूरि भट्टारक **श्रीदेवसुन्दरसूरि**, तत्पट्टालङ्कार(ङ्कर)ण **श्रीज्ञानसागरसूरि** प्रमुख सकलपरिवार-सहित अम्हारइ कुलि-क्रमागत सुगुरु वर्णवी तउ शोभइ ॥१ अहो० ॥

मन्त्राधिराजं प्रवरप्रभावं संसारवारांनिधिवर्यनावम् ।
सिद्धान्तसारं परमेष्ठिमन्त्रं त्वं वर्णयोज्जासितकर्मतन्त्रम् ॥१॥ ४

अहो वर श्रीनउकार महामंत्र वर्णवि । किसिउ छइ ति ? जु महामंत्र समस्त मंत्रमाहि मंत्राधिराज नाश(शि)ताशेषदोषसमाज महिमा अपार सकलसिद्धान्तसार संसारोदधिप्रवहण अष्टकर्मविहंडण पांच पद आठ संपद अधिकार अठसठि अक्षरोच्चार श्रीपरमेष्ठिनमस्कार वर्णवी तउ शोभइ ॥१॥

श्रीचन्द्रगच्छगुरुमानसराजहंस ! चारित्रपात्र ! वरसूरिशिरोवतंस ! ।
श्रीसोमसुन्दरगुरुः कलिकालसर्व-विद्यास्पदं विजयते जितवादिदेवम् ॥१॥ ५

अहो वर**श्रीचन्द्रगच्छ**-सरोवर-राजहंस सकलसुविहितसूरिशिरोवतंस पवित्र-चारित्रपात्र सर्वलक्षणालंकृतगात्र सर्वविद्यालंकार श्रीगौतमावतार अभङ्गगुरुभाग्याभोग **श्रीदेवसुन्दरसूरि**, कमलाशृङ्गारहार **श्रीमुनिसुन्दरसूरि-श्रीजयचन्द्रसूरि-श्रीजिनसुन्दरसूरि** प्रमुख बहुपरिवारपरिवृत सर्वगुणनिधान युगप्रधानसमान **श्रीसोमसुन्दरसूरि** गणधर अम्हारइ कुलि गोत्रि आराध्यमान जयवंता वर्तइं ॥१॥

नरेन्द्रदेवेन्द्रकृतांह्रिसेवः संवर्ण्यतां श्रीजिन एव देवः ।
विभूषितो योऽतिशयैरशेषै-र्विवर्जितोऽष्टादशभिश्च दोषैः ॥१॥ ६

अहो वर श्रीजिनदेवता वर्णवि । किसिउ छइ ? जु परमेश्वर सुरासुर-नरेन्द्रविहितसेव देवाधिदेव चउत्रीसअतिशययुक्ति(क्त) पांत्रीसवचनगुणसंयुक्त अष्टादशदोषअदूषित अष्टमहाप्रातिहार्यविभूषित नवग्रहसेवितपदकमल निर्धौतन-पापमल परिनष्टजन्मजरामरण विश्वत्रयशरण छत्रत्रयविराहि(जि)त वेदादिसर्वशास्त्र-कथित संसारसमुद्रतारक अरिहंतभट्टारक जगत्त्रयशिरोमणि शोभइ ॥१॥

विमलकेवलकेलिनिकेतनं परमनिर्वृतिशर्मनिबन्धनम् ।
नमत तीर्थकरं जिननायकं विपुलमङ्गलकामितदायकम् ॥१॥ ७

अहो वर सकलकेवलज्ञानविलोकितलोकालोक अनन्तलक्ष्मीशृङ्गारहार संसारसागरतारणतरण्डवर चउत्रीसदिव्यातिशयसनाथ अढारमहादोषक्षयकारक कल्याणमङ्गलमहोत्सवादायक श्रीचउवीस तीर्थंकर अरिहंत देवाधिदेव विहितत्रि-भुवनसेव अम्हारइ कुलि गोत्रि आराधीता पूजीता जयवंता वर्त्तइं ॥१॥

कल्याणवल्लिजलवाहसुनामधेया लोकोत्तरोल(ल्ल)सदभुं(भ)ङ्गरु(र)-भागधेयाः ।
श्रीसोमसुन्दरयतिप्रथिताभिधाना अस्मत्कुले किल जयन्ति युगप्रधानाः ॥१॥ ८

अहो वर अम्हारइ कुलि अतिशयनिधान सकलकल्याणवल्लिपल्ल-वनमेघसमानु श्रीसिद्धान्तक्षीरसागरपण्यसावधान वादिमतंगजभञ्जनपञ्चाननोपमान युगप्रधान महिमानिधान तपोगच्छमण्डन सुविहितशिरोमणि अम्हारइ कुलि **श्रीसोमसुन्दरसूरि** गणधरसमान आराधीता जयवंता वर्तइं ॥१॥

वरतुरङ्गमहस्तिघटाविभुः सुभटकोटिनिषेव(वि)तसन्निधिः ।
ऋषभदेव-सुमङ्गलयोः सुतो विजयते भरतेश्वरभूपतिः ॥१॥ ९

अहो वर चउरासीलक्ष हस्ती, चउरासी लक्ष तुरङ्गम, चउरासीलक्ष रथ, छण्णू कोडि गाम, बहुत्तरि लक्ष पत्तन, छत्रीस लक्ष वेलाउल, त्रीस सहस्र राजधानी, बहुतरि सहस्र वेश, एकवीस सहस्र संनिवेश, बहुत्तरि सहस्र नगर, बत्रीस सहस्र अयोध्यासमान नगरी, चउसट्ठि सहस्र अन्तःपुरी, सवालक्ष वाराङ्गना, बत्रीस सहस्र मुकुटबद्ध राय, सोल सहस्र यक्ष, नव निधान, चऊद रत्न, बत्रीस सहस्र कुलाङ्गना, बत्रीस भेदि नाटक, त्रिणि सइं साठि सूपकार, सोल सहस्र क्षेत्र, उगण सहस्र उद्यानवन, नवाणू सहस्र द्रोण, चउरासी लक्ष तराल, चउरासी लक्ष सूत्रधार, सात कोडि कौटम्बिक, चऊद सहस अमात्य, सवा कोटि व्यापारिया, बत्रीस कोडि कुल, चऊद सहस मन्त्रीश्वर, सोल सहस्र म्लेच्छ राजा, चउवीस सहस मटम्ब, चऊद सहस संबोधत (सम्बाधन?), चऊद सहस जलपथ, चऊद सहस द्वीप, चउवीस सहस कटक, -तणउं ऐश्वर्य पालइ । समस्त अन्याय अनुयुक्ति टालइं । श्रीयुगादिदेवकुलावतंस, देवीसुमङ्गला-कुक्षसरोवरराजहंस, चउरासीपूर्वलक्ष आयुः, पांचसइ धनुषप्रमाणशरीरि या(आ)दर्शभुवनमाहि केवलज्ञान ऊपार्जी अनन्तसौख्य मोक्ष पहतउ, इसिउ श्रीभरतेश्वर प्रथम चक्रवर्ती वर्णवी तउ शोभइ ॥१॥

असङ्ख्यदुःखोपशमैकहेतु-रपारसंसारपयोधिसेतुः ।
मन्त्राधिराजोऽस्तु जनेष्टकामा-वाप्तेः करः श्रीपरमेष्ठिनामा ॥१॥ १०

अहो० असंख्यभवे(वो)पार्जितपापपङ्कनिर्नाशनप्रचण्ड संसारसमुद्रपतित-भव्यजीवसमुद्धरणसंतुदण्ड(?), भक्तिमुक्तिप्रदायक समस्तविद्यामन्त्रदायक विघ्नव्रातहर समस्तमनोवाञ्छितकर श्रीपञ्चपरमेष्ठिमहामन्त्र नवकार अम्हारइ कुलि ध्याई तउ शोभइ ॥१॥

शत्रुञ्जयक्षोणिधरावतंसः समस्तयोगीन्द्रकृतप्रशंसः ।
विश्वत्रयीमानसराजहंसः श्रीनाभिसूनुस्तनुतां शिवं वः ॥१॥ ११

अहो वर श्रीशत्रुञ्जयतीर्थविभूषण विगतदूषण सकलयोगीन्द्रध्येयपदकमल प्रक्षालितपापमल प्रथमतीर्थङ्कर श्रीआदिश्वर सकलकल्याणकर अम्हारइ कुलि परमदेवता आराध्यमान जयवंता वर्त्तइं ॥१॥

कल्याणमालाकरणैकदक्षः श्रीपार्श्वनाथः कृति(त)विश्वरक्षः ।
विशुद्धसद्धर्मपथप्रणेता नन्द्यात् स देवो दुरितापनेता ॥१॥ १२

अहो शालक सकलकल्याणमहोत्सवाभ्युदयदायक भवभयभीतजन्तुजात-रक्षाविधायक जीवदयामूलविशुद्धधर्ममार्गप्रकाशक सर्वदुरितव्रातविनाशक देवाधिदेव त्रैलोक्यविहितसेव गुणसनाथ श्रीपार्श्वनाथ अम्हारइ कुलि गोत्रि पूज्य ध्येय नमस्करणीय जयवंता वर्त्तइं ॥१॥

कल्याणकारी महिमावतारी सिद्धान्तचारी दुरितापहारी ।
संस्मर्यते श्रीपरमेष्ठिनामा मन्त्राधिराजो(जः) कुलयस्मदीये ॥१॥ १३

अहो वर श्रीसिद्धान्त वर्णवउं सार महिमा प्रभाव करी अपार सर्वमङ्गल-कारक सर्वभूतप्रेतप(पि)शाचदुष्टदोषनिवारक एवंविध पंचपरमेष्ठिमन्त्र वर्णवी तउ शोभइ ॥१॥

अतुलमङ्गलमण्डलदायकः सकललब्धिनदीजलदायकः ।
जयति गौतमसर्वगणाधिपः प्रबलविघ्नतमिश्रदिनाधिपः ॥१॥ १४

अहो शालिक अनेकि मंगलीकमालादायक सर्वलब्धिलहरीनदीदायक द्वादशाङ्गीसूत्रधारक छत्रीसगुणआधार सकलदुरितअन्तरायत्रासकर चऊदविद्याकर श्रीमहावीरप्रथमगणधर विश्वत्रयशिवङ्कर सर्वगच्छप्रथमगुरु निखिलपापहर श्रीगौतमस्वामि अष्ट महासिद्धि जेहनइं नामि अम्हारइं कुलि गोत्रि आराध्यता ध्यायीता वर्त्तइं ॥१॥

श्रीमत्तपागणनभोऽङ्गणभासुकल्पाः सिद्धान्ततर्कसुविचारणचारुजल्पाः ।
वैराग्यमुख्यगुणलक्षधरा धरायां श्रीसोमसुन्दरवरा गुरवो जयन्ति ॥१॥ १५

अहो वर सकल सिद्धान्त तर्क काव्यतणा जाण लोकमाहि प्रमाण वादिदर्पखण्डन सर्वदर्शनमण्डन पंचमहाव्रतपालक षट्जीवसंसा(पा? भा?)लक पूर्वऋषिआचारपालक श्रीगौतमावतार विनिर्जितदुर्वारमार श्रीतपागच्छनायक भट्टारक प्रभु **श्रीसोमसुन्दरसूरि** अम्हारइ कुलि गोत्रि आराध्यमान जयवंता वर्त्तइं ॥१॥

गजैस्तुरङ्गैश्च पदातिवृन्दैः षट्त्रिंशता राजकुलैश्च सेव्यः ।
पाता प्रजानां विजयी विभाति भूपः सुरत्राणमहम्मदाह्वः ॥१॥ १६

अहो शालक आसमुद्रान्त पृथिवीतणउ स्वामी मर्यादामयहर शरणागत-वज्रपञ्जर परनारीसहोदर रंढरावण सत्यप्रतिज्ञाहरिश्चन्द्र न्यायश्रीराम दानि विक्रमादित्य कलिकालकर्ण धनुर्वेदद्रोणाचार्य प्रकटप्रताप **श्रीमहमदपातसाह** ।

भद्रजाती मन्दजाती मृगजाती मिश्रजाती मदकल गजेन्द्रघटा, अनइ जात्य घोडा हरीडा नीलडा गोरडा कालुआ कीसोडा किहाडा रातडा सेराहा उराहा कुलाहा उकहा तेजी तोषार खुरासाणी सींधवा पारसी कांबोजां कानूजा काछेजा एवमादि तुरङ्गम घाट, अनइ खान खोजा मीर मलिक मलाम लांलिम खतीब सैद कादी हाबसी बलोची बंगाली दक्षिणी तिलंगा कान्हडा, अनइ प्रधान पोतदार मांडविया जामतिआ जवहरी साह सेठि पील बाणउतार चरवादार असलीजा बंदा टाक कायस्थ ब्रह्मक्षत्रिय, एवमादि चतुरंग कटकि परिवारि परिवरिउ ।

अनइ सूर्यवंश सोमवंश यादववंश कदम्बवंश इक्षाकुवंश चहुआणवंश सोलंकीवंश मोरियवंश सेलारवंश छिंदकवंश चाउडावंश पडिहारवंश लुब्धकवंश रावउडवंश शकवंश करटपालवंश चंदेलवंश गुहिलवंश गुहिलउत्रवंश पोतिकवंश मंकूआणवंश धान्यपालवंश राजपालवंश निकुम्भवंश दाधिकवंश कालुम्बकवंश हूणवंश कलंबवंश डोडवंश दिल्लवंश डाभीवंश हरिकरिवंश हरिसंचकवंश वागडीवंश धर्कटवंश — ए छत्रीस राजकुली, अनइ अनेराइ वाघेला झाला देवाला बोडा जाडेचा चूडासमा सोढा राठी काठी जेहनी [आण?] सदा नीपजावइ ।

अनइ जेह **श्रीमहम्मदपातसाह**तणी छत्रछाया विवेकनारायण **गूजरदेशा**-भरणि **श्रीअणहिल्लवाडइ पाटणि, अहम्मदावादनगरि** अनइ **खंभायति** श्रीधर्मतणइ आगरि अनेरइ गामि नगरि ठामि ठामि चउरासी ज्ञाति महाजन आपणा आपणा कुलाचार सूधा व्यवहार अनइ सदाचार पालइं । अन्याय अयुक्ति टालइं । अनइ सुकृत संचइं । किसी कहीइ ? ते महाजनतणी चउरासी ज्ञाति सांभलि प्रतिपन्नउं —

पाली ज्ञाति श्रीश्रीमाली, प्रकटप्रताप पोरुआड, अरडकमल्ल उसवाल, भला दीसइ डीसावाल, डींडू हरसउरां वाग्घेरवाल, भांभू खंडोअड मेडत्तवाल, दाहिल सूराणा खण्डेरवाल, कथरउटिआ कोरंटावाल, सोध सोनी जाइल्लवाल, नागर अनइ नाणीवाल, खडायता अनइ पल्लीवाल, जालहरा वायडा अनइ चित्रवाल, छांचा कपोल अनइ पुक्खरवाल, जंबूसरा नागद्रहा सुहडवाल, मट्टेउरा करहिया अगरवाल, बांभ अछित्त अनइ अच्छित्तवाल, श्रीगुड अनइ गूजर

श्रीमाल, प्रो(?घौ?)ढ अडालिजा मांडलिया गांभूआ मोढ लाडूअ श्रीमाली अनइ लाड जांगडां सोरठिआ पोरुआड नयम(?)रुस्तकी नरसिंघउरा, हालर पंचम अनइ काथउरांवाल, मीक कंबो अनइ तिसउरा तेलउटा(रा?) अष्टवर्गी बंधणउरा सिरखंडेरा, अनइ मेवाडा भोडियडा काट, अनइ जिणडा जेहराणा सोहरिया धाकडा मुहवरया भडिआ भूंगडिआ हूंबड नीमा, अनइ मडाहडा ब्राह्माणा वागडू चीत्रउडा वीघूमाथर, अनइ नाउरा पद्मावती काकलीआ णंदउरा मंडोरा, अनइ साचउरां गोलावाल, अनइ राजउरा लाडीसखा आउसखा चउसखा, एवमादि साढीबार ज्ञाति शाखा प्रशाखा ।

अनइ वली जेह **श्रीमहम्मदपातसाह**तणी सौम्यदृष्टि छइ दर्शन आपणा आपणा धर्मशास्त्र वाचइ, श्रीदेवगुरुतत्त्वि राचइ, विद्याबलिं माचइं, पुण्यकर्म आचरइ चित्ति सांचइ । किसियां कहीइ ते छ दर्शन ? सांभलि —

जिम सरोवर [माहि] मानससर, जिम दातारमाहि जलधर, जिम समुद्रमाहि स्वयम्भूरमण, जिम धनवंतमाहि वैश्रमण, जिम तेजवंतमाहि सूर, जिम वाजित्रमाहि तूर, तिम सर्वदर्शनमाहि धर्मविद्यामहिमाकरी प्रधान **श्रीजैनदर्शन** जाणिवउं । जिहां निरतीचार चारित्रपात्र मलमलिनगात्र तपोधन-तपोधना **श्रीवयरस्वामि**तणी शाखइं, छ जीवनिकाय राखइं, दयामूल धर्म भाषइ, सर्व आरम्भ पाखइ, मोक्षनउ मार्ग दाखइ । अनइ जिहां श्रावक-श्राविका श्रीवीतरागदेव भजइ, आरम्भ करतां चित्ति धूजइ, सूधउं धर्मतत्त्व बूझइ, मिथ्यात्वि म मूंझइ । तिहां वली हवडा गंगाजलनिर्मलज्ञानक्रियानिधान सर्वगच्छप्रधान अतुच्छ **श्रीतपागच्छ** विशेषिं दीपइं, कलिकश्मलित छीपइ । अनइ अनेराइ संप्रति चऊदसिया पूनमिया वडगच्छा खरतर मलधार आंचलिया आगमिया आ(ना?)गउरिआ पीपलिआ मडाहडा देहगती (?) ब्रह्माणा विद्याधर थिराद्रा नायला नाणावाल चित्रावाल कोरंटावाल उसवाला एवमादिक घणा गच्छ गच्छान्तर मिथ्यात्व उथापइं श्रीजिनधर्म थापइ ।

तथा बीजइ दर्शनि **नैयायिक** कपाली घंटाला पाहू केदारपुत्र आयरियमढ वीपतीआणा एवमादि भेदि । त्रीजइ दर्शनि **सांख्य** भरडा भगवंत त्रिदंडिआ मूनी कवि कूडारा एवमादि भेद । चउथइ दर्शनि **बौद्ध** सातघडिया दगडा डागुरा भांड पावइआ गरोडा वासबेटिया एवमादि भेद । पां[चमइ] द[र्श]नि

वैशेषिक ब्राह्मण आवस्तिया अग्निहोत्रिआ दीक्षित जानी दुवे त्रिवाडी व्यास जोसी पण्डित बडूआ एवमादिभेद । छठइ दर्शनि **नास्तिक** जोगी हरमेखलिआ इन्द्रजालिआ नागमतिआ तोतलमतिआ गोगामतिआ धनवंतरिआ नोरसिआ धातुर्वादिया एवमादि भेद-प्रभेद बहुल छ दर्शन कहीइं ।

अनइ वली जेहथी **श्रीमहम्मद पातसाह**तणइ राजि च्यारि वर्ण, नव नारू, पांच कारु, ए अढारइ प्रकृति सदा सुखित मुदमुदित वसइं, ते इसिउ राजाधिराज सर्व वइरी जीपतउ, सूर्यनी परि तेजि दीपतउ, **तुरुष्क**कुलमण्डन सोमतणी परि सौम्यदर्शन प्रजा प्रतिं पीहर सेवकसदाफल **सुरत्राण श्रीम(अ)ह-म्मदपातसाह** तणउ पुत्र, संग्रामि शूर वीराधिवीर **सुरत्राण श्रीमहम्मदपातसाह** वर्णवी तउ शोभइ ॥१॥

अहो वरबोलि ॥ इति श्लोकः ॥

* * *

श्रीसोमदेवसूरिरचितः
धरणविहारस्थ-युगादिदेवस्तवः (सावचूरिः)

– सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

तपगच्छपति श्रीसोमसुन्दरसूरिजीना शिष्य श्रीसोमदेवसूरिजी समर्थ कवि, व्याख्यानकार अने वादी हता. मेवाडनरेश राणा कुंभाजी तेमनी काव्यकलाथी, जूनागढनो रा'मंडलिक तेमनी समस्यापूर्तिनी शीघ्रताथी तेमज चांपानेरनो राजा जयसिंह चौहाण तेमना उपदेशसामर्थ्यथी प्रभावित थईने तेमने बहुमानता हता. सोमदेवसूरिने सुधानन्दनसूरि, सुमतिसुन्दरसूरि, पं. नन्दीरत्नगणि, पं. चारित्रहंसगणि, पं. सिद्धान्तसागरगणि, पं. रत्नसागरगणि, रत्नमण्डनसूरि व. बहोळो शिष्य-प्रशिष्य परिवार हतो. महो. हेमहंस गणिना तेओ विद्यागुरु हता. सिद्धान्तस्तव (-जिनप्रभसूरि) अने युष्मदस्मत्स्तव (-सोमसुन्दरसूरि) पर अवचूरिओ, कथामहोदधि, चतुर्विंशति-जिनस्तोत्र व. तेमनी रचनाओ छे.

सं. १४९६मां राणकपुरना त्रैलोक्यदीपक प्रासाद - धरणविहारना प्रतिष्ठा-महोत्सव वखते तेमनी आचार्यपदवी थई हती. प्रस्तुत स्तव ते प्रासादना ज मूळनायक श्रीआदिनाथनी स्तवनास्वरूप छे. कृतिना अन्ते पुष्पिकामां तेमनो 'उपाध्याय' तरीके उल्लेख होवाथी आ स्तव प्रासादनी प्रतिष्ठापूर्वे रचायुं होय अने लखायुं होय तेम सम्भवे छे. कदाच प्रतिष्ठामहोत्सव दरमियान ज आचार्य पदवी पूर्वे ते रचायुं होय अने लेखन वखते तेमनो रचनाकाळनो उपाध्याय तरीकेनो उल्लेख यथावत् रखायो होय तेम पण बनी शके.

९ श्लोकनुं आ नानकडुं स्तोत्र यमक अने अनुप्रासने लीधे आह्लादक बन्युं छे. व्याकरणनुं ऊंडुं ज्ञान, शब्दकोशोनुं परिशीलन अने कल्पनाकौशल - आ बधां वानां भेगां थाय तो ज आवां काव्यो नीपजी शके. काव्यना अन्ते कविअे दीक्षागुरु सोमसुन्दरसूरि अने विद्यागुरु 'कृष्णसरस्वती' जयचन्द्रसूरिनां नाम गूंथ्यां छे. स्तव पर कोई अनामी विद्वज्जने (प्रायः कर्ताना शिष्यपरिवारमांथी ज कोईक हशे) अवचूरि लखी छे.

वच्चे मूळ स्तव अने फरती चार बाजु अवचूरि लखेली पंचपाठी प्रत परथी काव्यनुं सम्पादन थयुं छे. संवेगहंस गणि द्वारा लिखित आ प्रत पूज्य

गुरुभगवन्त आ. श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी म.ना अङ्गत संग्रहनी छे.

प्रतमां अेक बाजु अवचूरि सहित प्रस्तुत स्तव छे. अने बीजी तरफ अवचूरि साथे 'विभाति यद्भासस्तरुणाऽरुणारुणा'थी आरम्भातुं सोमदेवसूरिजी द्वारा ज रचित पार्श्वनाथ सयमक स्तवन छे. आ स्तवन साराभाई मणिलाल नवाब द्वारा प्रकाशित जैनस्तोत्रसंग्रह - भाग-१मां मुद्रित छे. तेथी ते अत्रे प्रकाशित नथी कर्युं.

अेक खुलासो जरूरी लागे छे के पार्श्वनाथसयमकस्तवन उपरोक्त संग्रहमां श्रीसोमसुन्दरसूरिजीना नामे छपायुं छे. सम्भव छे के स्तवनना अन्तिम पद्यमां सोमदेवसूरिअे गुरुभगवन्त सोमसुन्दरसूरिनो नामोल्लेख कर्यो होवाथी आ धारणा जन्मी होय, पण अे बराबर नथी. वळी '०नन्दश्रीगुरुसोमसुन्दर०' अे पंक्तिमां सोमसुन्दरसूरिजीना नाम आगळ स्पष्ट पणे 'गुरु' शब्द प्रयोजायो ज छे. कर्ता पोते पोताना नाम आगळ 'गुरु' शब्द मूके खरा ? आवी ज अन्यथा धारणा सोमसुन्दरसूरिकृत स्तम्भनपार्श्वपंच-विंशतिकाना अन्तिम पद्यमां कर्ताना गुरु देवसुन्दरसूरिनो नामोल्लेख जोईने थई छे, अने अेटले उपरोक्त संग्रहमां अे स्तवन देवसुन्दरसूरिना नामे मुद्रित थयुं छे. आ अंगे अनुसन्धानना ६२मा अंकमां खुलासो करेल छे.

अत्रे प्रकाशित थतुं स्तवन पण आ पूर्वे 'निर्ग्रन्थ' सामयिकना त्रीजा खण्डमां गुजराती विभागमां (पृ. १७३-१७५) '१५मा सैकानी बे अप्रगट रचनाओ' शीर्षक हेठळ मुनि कृतपुण्यसागर द्वारा सम्पादित थईने उपरोक्त पार्श्वनाथसयमक स्तवन साथे प्रकाशित थयुं छे. सम्पादके आधार तरीके राखेली प्रत सं. १५१३मां लखाई छे. अने तेमां सोमदेवसूरिना नामवाळी पुष्पिका साथे अत्रे प्रकाशित थतुं स्तवन तथा उपरोक्त पार्श्वनाथसयमकस्तवन मूळमात्र लखायां छे, अने तेथी 'निर्ग्रन्थ'मां ते मूळमात्र ज प्रकाशित थयां छे. अत्रे प्रकाशित थती अवचूरि आ पूर्वे अप्रकाशित होवाथी अवचूरि साथे स्तवननुं पुनः प्रकाशन उचित धार्युं छे.

*

धरणविहारस्थ-श्रीयुगादिदेवस्तवः (सावचूरिः)

सुषमातिपुराणपुरे, राणपुरे श्रीचतुर्मुखं प्रणमन् ।
प्रथमजिनं सुकृतार्थी, सुकृतार्थीभवति को न जनः ॥१॥

सुषमया अतिक्रान्तानि पुराणपुराणि अयोध्यादीनि येन तस्मिन् ॥१॥

त्वयि जनकदम्बकानन-कदम्बकाननघनाघनसमान! ।
अद्याऽजनिमम! दृष्टे-ऽजनि मम दृष्टेः सफलभावः ॥२॥

हे अजनिमम!, जनिर्जन्म, ममशब्देन ममता च, तदुभयरहितः । अजनि ॥२॥

किङ्करमानिबिडौजसि, निविडौजसि यस्त्वयीश! भक्तिपरः ।
तं संवररमणीयं, वररमणीयं भजेन्न किं मुक्तिः? ॥३॥

किङ्करमात्मानं मन्यन्ते भक्ततया एवंविधा बिडौजसो यस्मिन् ॥३॥

अविरतमनघनमज्जन-घनमज्जनतस्तवाऽऽगमोर्मीषु ।
जलधिवदुरुकमलालय!, मलालयः कैर्न मुच्यन्ते ॥४॥

अनघा नमज्जना यस्य । पक्षे कमलं- जलम् ॥४॥

तव जगदानन्दीश्वर!, नन्दीश्वरचैत्यविजयिनमिहैत्य ।
सुधियोऽप्यमुमनिभालय-मनिभालयतः कथं मुधा न जनुः ॥५॥

जगदानन्दयतीति शील ईश्वरः- स्वामी, तस्य सम्बोधनम् । इह राणपुरे, एत्य- आगत्य । नन्दीश्वरचैत्यानामपि केवलचतुर्मुखानां त्रिभूमचतुर्मुखतया विजयिनममु तवाऽनिभालयं- निरुपमगृहं चैत्यमित्यर्थः । अनिभालयतः सुधियोऽपि कथं न मुधा जनुः । अद्भुततीर्थदर्शनफलं हि जनुः, अद्भुततीर्थानामवधिश्चाऽयं तवाऽऽलय इत्यर्थः ॥५॥

स्वमसमसमुदयसदनं, समुदय! सदनन्ततेजसां मन्ये ।
यदनञ्जननमने निज-जननमनेनिजमहं तवाऽऽद्य कृते ॥६॥

सह मुदा- हर्षेण वर्तते यः स अयो- भाग्यं, तस्य सदनम् । सदनन्ततेजसां- प्रधानानन्तमहसां हे समुदय!, तेजःशब्देनाऽत्र प्रभावो ग्राह्यः । ''तेजस्त्विट्रेतसो बले नवनीते प्रभावेऽग्नौ'' इत्यनेकार्थवचनात् । निजजननम्

अनेनिजम् 'णिजृंकी शौचे' त्यस्य धातोर्ह्यस्तिनी-अमि रूपम् । पवित्रमकार्षमित्यर्थः ॥६॥

शिवमेलसज्ज! पावन!, लसज्जपावनविडम्बिनि शुचौ ते ।
पदनखमहे शलभतां, महेश! लभतां ममाऽघभरः ॥७॥

शिवस्य मेलो- मेलनं, तत्र हे सज्ज! । हे पावन! । शुचौ पवित्रे, पक्षेऽग्नौ । 'मह'शब्दोऽत्र तेजेऽर्थेऽकारान्तः । ''महं च महसाद्युता''विति **शब्दप्रभेद**वचनात् ॥७॥

जगदपि धर्मधुरन्धर!, मधुरं धरणेन्द्र! गायति यशस्ते ।
चतुरास्यविभुविहारं, भुविहारं यद् ध्रुवं न्यास्थः ॥८॥

स्पष्टोऽयम् ॥८॥

श्रीसोमसुन्दरप्रभ!, दरप्रभग्नाङ्गितप्तिजयचन्द्र! ।
इतिनुत! मामनु परमा-मनुपरमां वृषभ! शिवरमां देयाः ॥९॥

दरेण- बाह्याभ्यन्तरेण भयेन प्रभग्ना येऽङ्गिनस्तेषां तप्तेस्तापस्य जये चन्द्रो, ''जले चन्द्रोंऽ_काम्ययोः स्वर्णे सुधांशौ कर्पूरे'' इ**त्यनेकार्थ**वचनात् - जलम् । शिष्टं स्पष्टम् ।

मामनु- लक्ष्यीकृत्य । परमां- प्रकृष्टाम् ॥९॥

॥ इति राणपुरस्तवावचूरिः ॥

इति श्रीचतुर्मुखश्रीधरणविहारशृङ्गारहार-श्रीयुगादिदेवस्तवः श्रीपरमगुरु-पुरन्दर-श्रीसोमसुन्दरसूरिशिष्यमुख्य-महोपाध्यायनायक-श्रीसोमदेवगणिपादैर्विरचितः सुधीभिर्भण्यमान आच[न्द्रा]र्कं नन्द्यात् ॥ लिखितः संवेगहंसगणिना ॥
शुभं भवतु लेखकपाठकयोः ॥ श्रीरस्तु ॥

* * *

श्रीजयचन्द्रसूरि-शिष्य-रचितं
देलउलालङ्कार-ऋषभप्रभुस्तोत्रम्

- सं. अमृत पटेल

[श्रीसोमसुन्दरयुगना प्रगल्भ विद्वान श्रमणो द्वारा रचायेलां स्तोत्रोनी छटा कंईक अनोखी ज होय छे. आ युगमां अेटअेटलां स्तोत्रो रचायां छे के सेंकडोनी संख्यामां प्रकाशित थवा छतां खूटतां ज नथी, नवां नवां मळ्ये ज जाय छे. संस्कृत साहित्य जगत आ श्रमणोने कारणे केटलुं रळियात बन्युं छे ! प्रबल भक्तिमां ज्यारे ज्ञाननी शक्ति उमेराय त्यारे थती अभिव्यक्ति केटली मधुर होय छे ते तो आ स्तोत्रोना आस्वादको ज माणी शके !

प्रस्तुत स्तोत्र सोमसुन्दरसूरिजीना शिष्य श्रीजयचन्द्रसूरिजीना शिष्यनी रचना छे. २५ श्लोकोना आ स्तोत्रमां देलवाडास्थित श्रीआदिनाथनी स्तवना थई छे.

ला.द. विद्यामन्दिरनी नं. २९४४४/१ प्रत उपरथी पं. श्री अमृतभाई पटेल द्वारा आनुं लिप्यन्तरण-सम्पादन थयुं छे. मूळ प्रत के तेनी Xerox प्रतिना अभावे, शुद्धीकरणनी जरूरियात होवा छतां, यथामति सामान्य शुद्धीकरण ज शक्य बन्युं छे.]

*

कल्याणावलिवल्लरीवनसमुल्लासैकधाराधरं,
धर्मन्यायपथप्रथात्रिपथगाप्रालेयपृथ्वीधरम् ।
श्रीमद्**देलउला**ह्वतीर्थवसुधाशृङ्गारचूडामणिं,
स्तौमि श्री**ऋषभ**प्रभुं त्रिभुवनाभीष्टार्थचिन्तामणिम् ॥१॥
आनन्त्यं बत केऽपि ते गुणगतं तुल्यं निगोदात्मना-
मानन्त्येन विदुर्वयं तु नयतोऽनन्तद्वयाऽनिष्ठितिम् ।
अंशोऽनन्ततमो व्रजेदिह गुणास्ते बिभ्रतेऽनेहसा-
ऽनन्तेनाऽपि तु वृद्धिमेव भुवनैरादीयमाना अपि ॥२॥
मन्ये **देलउला**ऽवनीवनघन! त्वत्कप्रभावेऽद्भुते,
विश्रामन्त्यणिमादिमा निरुपमाः सर्वा महासिद्धयः ।

नो चेद् विष्टपवाञ्छितार्थघटनव्यङ्ग्ये विभुत्वेऽप्यसा-
वेतां मूर्त्तिमणीयसीमपि तवाऽध्यास्ते समस्तः कथम् ॥३॥
श्रुत्वा **देलउला**ललाम! भगवन् नंधादिको ---द्(?)
भावि त्वन्महिमैक**डिंडिम**डमत्कारं जगत्प्राङ्गणे ।
अंधांकैकरचिल्लभानि(?) सुदृशां स्पर्द्धान्नुभानां(?) दिव-
स्त्वामाराद्धुमुपागमन् सुममिषात् तत्[सद्?]गुणप्राप्तये ॥४॥
श्रीनाभेय! भवाटवीभ्रममहातापच्छिदि त्वद्वपुः-
कुण्डे मानवदेवदानवगणैर्नेत्राम्बुजार्घ्यं जलम् ।
लावण्यामृतसञ्चयः प्रतिकलं पेपीयमानोऽपि नो
यत् क्षीयेत तदत्र चित्रकलता नूनं जटा जृम्भते ॥५॥
कुर्युः कर्मसमग्रमुग्रमनिशं मिथ्यादृशो दर्शनि-
श्राद्धर्षि-क्षपकादयस्तनु तनु तेभ्यः क्रमाद् यावता ।
सिद्धाः कर्ममुचः प्रभुः स च नयः स्यात् कर्मकृत् तद् ध्रुवं,
यावान् जन्तुषु ते मते परिचयस्तावान् प्रभुत्वोदयः ॥६॥
ध्यातारस्तव यद् भवन्ति सपदि छत्रस्फुरच्चामर-
श्रेणीहेममहासनादिमहिमारूढाः किमेतन्नवम् ।
यत्तेषामधिचित्तभूमि समवासार्षीः प्रभुस्तस्य च,
छत्राद्यन्वयि सन्ततं जिनपतेः स्युः प्रातिहार्याणि यत् ॥७॥
सान्द्रानन्दरसप्रणम्रशिरसः स्व-र्भू-र्भुवो भाविनो,
जातास्त्वच्चरणारुणांशुनिचयैः श्राक् ताम्रचूडाः समे ।
यज्जल्पन्ति च ते तदा तव नुतिं तत् सूचयन्ति ध्रुवं,
मिथ्याभावविभावरीविरमणान्मुक्तिप्रभातागमम् ॥८॥
पद्माभां दृशमन्धतां विबुधतां जाड्यं जगज्जैत्रतां,
दैन्यं चेति नवं नवं बहुविधं भक्तेतरेषु क्रमात् ।
तन्वाने भवतो महिम्नि विमदः प्राच्यस्वसर्गच्छिदा-
लज्जातो विजयाय नाभिकुहरे धाता हरेर्ल्लीनवान् ॥९॥
युक्तं निष्प्रतिमप्रभावभवनस्नात्रोदकं तावकं,
सद्यः सिद्धरमत्वमेति दधते यद् धातवोऽस्य ह्(द्रु?)तम् ।

स्पर्शेणा(ना)ऽपि सुवर्णतां तनुमतां कृष्णादिरूपा अपि,
स्वामिन्! किन्तु नवं भवन्ति यदि नो मुक्तामया अप्यमी ॥१०॥
संसारार्णवलङ्घनक्षममहापक्षोऽन्तरायस्फुरद्-
व्यालालीकवलीकृतेरविकलत्रैलोक्यरक्षाऽभयः ।
युक्तं काश्यपगोत्रगौरव! परस्त्वं [स्वर्ण]कायः परं
चित्रं यत्पुरुषोत्तमैर्निजहृदाऽऽमोदासदाप्यूहसे ॥११॥
यद्यप्यस्त्यधुनातमाऽत्र नितमामुद्यत्तमा दुःषमा,
निद्रान्ति स्म चयात्मिका अपि मणीमन्त्रौषधद्धर्यादयः ।
हंहो! विघ्नमलिम्लुचाश्चरत मा स्वैरं तथाऽपि प्रभु-
र्यज्जागर्ति युगादिदेव! महिमा युष्माकमूष्मापहः ॥१२॥
ध्यानोद्दामबलेन सौवचरणप्रासादमुद्राद्रुहौ,
रागद्वेषमहाद्रुमौ द्रुतमपि प्रोन्मूल्य यौ मूलतः ।
शक्तिं तच्छिदमिच्छतां तनुमतां ज्ञीप्सुर्न्यधादंसयोः,
स्पष्टं त्वत्कजटाजटाकपटतः कष्टं स भिन्द्यात् विभुः ॥१३॥
यावत्केवललक्ष्मिपक्ष्मलदृशां स्वीकर्तुमुत्कण्ठितो,
राधावेधमिवैष साधयति ते ध्यानं महानन्दभाक् ।
एनं बाल्यकुमित्रवत् स्मरसुखास्तावत्क्षणात् क्षोभय-
न्त्यध्यक्षं किमुपेक्षसे तत इमान् कारुण्यभूस्त्वं प्रभुः ॥१४॥
किं रुष्टा ? वद, दृ(दु?)ष्ट पृच्छसि नु किं मूर्ध्ना सपत्नीं वहन् ?,
मा लोकोक्तिषु देहि देवि! हृदयं देल्लुल(ल्ल?)के यत्प्रभोः ।
स्नात्राम्भस्तदिदं समस्तसुखदं दध्वं तदाम्ये(मेऽ)प्यदः,
श्रुत्वेतीशसतीवचस्त्वयि न कः शैवोऽपि सेवोत्सुकः ? ॥१५॥
विश्वस्याऽप्युपकारकारणतया षड्दर्शनीवादिनः,
सर्वे **देलउलापुरे** भगवतो भक्तौ विवादं जहुः ।
तेषामत्र मुदा सदाऽपि युगपद् यात्रार्थमागच्छतां,
नेतुः स्नात्रविधावहंप्रथमिकारूपस्त्रयं(स्त्वयं) दुस्तरः ॥१६॥
हे रोषप्रमुखद्विषः! स्मृतिपथं प्राप्या कथा जाम्बुकी,
सूत्रे भाविनि मा पुनर्विशत नः प्राग्वद् विशङ्कं हृदि ।

नो चेद् वः क्षितिरुद् भविष्यति यतो जागर्ति तत्राऽधुना,
देवो युष्मदमन्दवृन्दकदलीकन्दैकदावानलः ॥१७॥
मन्ये त्वच्चरणारविन्दयुगलस्याऽऽलिङ्गिभिः काञ्चना-
म्भोजैर्नित्यनवत्वधारिभिरिदं चेतस्विनां सूच्यते ।
यस्या (येऽस्य) प्रास्तजरं पदं प्रददतः सेवारसे व्यापृताः
स्युस्तेषां न इव प्रणष्टजरसां नित्यं नवत्वस्थितिः ॥१८॥
शक्तः सैव वरप्रदेश उचितं शोषाय दोषाम्बुधेः,
सर्वासां समयः स एष समयः सम्पद्वधूनां युतौ ।
मित्रत्वं च रवेरवैमि दिवसे तत्रैव सत्पात्रयं(?)
ये दध्युः सहकारितां मम चिराशास्ये प्रभुप्रेक्षणे ॥१९॥
त्वद्धर्मागममर्मवर्मघटनाभाजां भिदि प्राणिनां,
प्रत्यूहाः प्रभवन्ति नाऽन्यस(म?)तिनां पुंसां किमत्राऽद्भुतम् ।
त्वन्नामाऽपि रमापिकप्रणयिनी माकन्दमानन्दतः
सत्त्वानां जपतां न ते हि निकटेऽप्यायान्ति दिव्या अपि ॥२०॥
स्वाज्ञाछत्रतले निवेश्य विपुले मुक्ताकलापोज्ज्वलैः,
संस्नाप्य प्रसरन्निजानणुचराः क्षीराब्धिनीरोच्चयैः ।
चण्डालः कलिकाल एष निखिलक्ष्मापालमालाधुरि-
ख्यातेनाऽद्य युगद्विजस्य भवता पङ्क्तौ विहाऽध्यासितः ॥२१॥
श्रीमद्देलउलावतंस! वृषभ! स्वः-कुम्भ-रत्न-द्रुमा-
द्या द्वाषष्टनयाशयाद्यदि परं भिन्नार्थतां बिभ्रति ।
इत्थं ये विदुरा न तेऽत्र विदुरावाञ्छावृषस्तत्परं
श्रेयश्चाऽऽदिमनामतोऽपि हि परैर्वाञ्छाऽपि नाऽर्थैरपि ॥२२॥
भ्रामं भ्रामं निकामं कपिचपलतया यत्तदोकः सुलोके,
श्रान्तेव प्राच्यमुच्चैः क्षमयितुमिव वा स्वाङ्गजस्याऽपराधम् ।
प्रायश्चित्तार्थिनीव क्वचिदपि यदि वाऽपायहेतुत्वभावा-
न्नित्यं लक्ष्मीर्यदंह्री शरणमरचयत् स श्रिये नाभिभूर्वः ॥२३॥
दैन्योक्त्या रोहणाद्रिः खरमुखरतरं पुष्करावर्त्तमेघा,
वृक्षा वेलाविलम्बात् परिणतिविरसं चापि भद्रा गजेन्द्राः ।

व्यामोहाद्यैश्च किञ्चित् सुरभिसुरमुखा वाञ्छितानि प्रयच्छ-
न्त्येतैर्भावैर्विना त्वं सदखिलफलदः कीर्त्यसे केन तुल्यः ॥२३॥
उच्चै राज्यादिदानात् कलिकलुषमलक्षालनात् तामसाना-
मुच्छेदाद् विघ्नभेदात् त्रिदशपतिकरस्पर्शनाद्दर्शनस्य ।
हेतुत्वात् सस्यसूर्याद्युदयफलपदस्वर्जनज्ञानभूत्त्वा-
द्भक्ते नाभेयदेव! प्रभुपदयुगलीगौरवं गौरवे हे ॥२४॥
एवं **श्रीगुरुसोमसुन्दर**गुणस्तोमप्रशस्तो मया,
भक्त्या **श्रीमुनिसुन्दर**त्वसुलभध्यानः किमप्यानुतः ।
श्रेयः **श्रीजयचन्द्र**चारुयशसां दाता भवेन्मे सदा,
पुष्या**द्देलउलावतंसऋषभः** सद्बोधिलाभोदयम् ॥२५॥

इति श्री युगादिदेवस्तवनम् ॥

* * *

पं. श्रीदेवधर्मगणिकृतं संस्कृतप्राकृतभाषानिबद्धं श्रीवृषभजिनस्तवनम्

– सं. अमृत पटेल

[पूर्वार्ध संस्कृत भाषामां अने उत्तरार्ध प्राकृतभाषामां धरावता ८+२ श्लोकोमां रचायेलुं आ स्तोत्र जयपुंढ्रसूरिजीना शिष्य पं. श्रीदेवधर्मगणिनी रचना छे. संस्कृतभाषामय तमाम पूर्वार्धो सळंग सामासिक पदो छे ते आ स्तोत्रनी विशिष्टता छे. स्तोत्र रसाळ अने भाववाही छे.

लालभाई दलपतभाई विद्यामन्दिरनी हस्तप्रत नं. ४७९५३/१ परथी पं. श्री अमृतभाई पटेले आ कृतिनी प्रतिलिपि करेली छे.]

*

सुरवरेशनरेशशिरोमणि-प्रकटसङ्घटितक्रमपङ्कजम् ।
पढमतित्थयरं रिसहेसरं, तह कहं थुणिमो मुणिमो जहा ॥१॥
विमलनाभिनरेशकुलाम्बर-प्रकटनैकविभाभरभासुर! ।
बहुभवज्जियकम्मतमोभरं, हण पहो! भुवणिक्कपहायर! ॥२॥
जनमनःकुमुदाकरबोधन-प्रवणपार्वणचन्द्रसमानन! ।
तुह पलोयणओ मह माणसं, हरिससंभरियं जलही जहा ॥३॥
जगदनर्घ्यगुणप्रगुणैकधी-धनवशीकृतविश्वमनोरथ! ।
भुवणवंछियकप्पतरो! सया, मह जिणेसर! देहि समीहियं ॥४॥
सदुपदेशसुधारसदूरिता-ऽखिलमहीतलदुःखदवानल! ।
तियसनाहनिसेविय! मे पहो!, कुणसु दुग्गइ-दुक्खनिवारणं ॥५॥
शशिसुधारसकुन्दसमुज्ज्वल-स्फुटयशोविशदीकृतदिग्गज! ।
मह मणो वि तहा नणु तेण किं, न हु भवे गुरुयाण [हु] संगओ ॥६॥
सुजननीमरुदेविसुधाभृतोदरसरोवरतामरसोपम! ।
तुह मुहे रिसहेस! पुणो पुणो, रमइ मे नयणं भमरोवमं ॥७॥
शमसुधारसपाननिराकृत-प्रबलमोहमहाविषविप्लव! ।
तयणु देहि पहो! निरुवद्दवं, सिवसुहं वसुहासुहदायग! ॥८॥

यः संस्कृतप्राकृतभाषया स्तवं, शत्रुञ्जयश्रीहृदयाधिपस्य ।
कण्ठे विधत्ते मणिमालिकोपमं, सदा शिवश्रीः श्रयति स्वयं तम् ॥९॥
इत्थं प्रभु **श्रीजयपुण्ढ्रसूरि**-शिष्याणुना संस्तुतपादपद्मम् ।
श्रीनाभिराजेन्द्रकुलावतंसं, सुदेवो मुदे वोऽस्तु युगादिनाथः ॥१०॥

इति संस्कृतप्राकृतभाषानिबद्धं श्रीवृषभजिनस्तवनं पं. देवधर्मगणिकृतम् ॥

—x—

मुनि श्रीसाधुकीर्ति-रचित
आषाढाभूति-प्रबन्ध

— सं. अनिला दलाल

[आषाढाभूतिनुं कथानक जैन परम्परामां घणुं प्रसिद्ध छे. ते कथानकने विषयवस्तु बनावती अनेक रचनाओ पण उपलब्ध थाय छे. तेमांथी अेक रचना अत्रे प्रकाशित थई रही छे.

प्रस्तुत रचना खरतरगच्छीय वाचक मतिवर्धननी परम्परामां थयेला दयाकलशना शिष्य साधुकीर्ति मुनिअे रची छे. संवत् १६२४ नी विजयादशमीना दिवसे योगिणीपुरीमां प्रस्तुत रचना थई छे. श्रीमालवंशीय पापडगोत्रीय शाह तेजपालनी विनन्तिथी आ कृति रचाई होवानो कर्ताअे उल्लेख कर्यो छे.

कृतिमां दूहा, चतुष्पदी, छप्पय, घत्ता, अडिल्ल, झूलणा, सोरठा जेवा अनेक छन्दो प्रयोजाया छे. कृतिमां गुरु अने आषाढाभूति वच्चेनो तथा आषाढाभूति अने नटपुत्री वच्चेनो संवाद प्रधानपणे निरूपायो छे. समग्रपणे जोतां कृति रसाळ अने सौष्ठवपूर्ण जणाय छे.

प्रा. श्री अनिलाबहेन दलाले प्रारम्भिक प्रयास होवा छतां, घणा परिश्रमपूर्वक आ कृति सम्पादित करीने मोकली छे. तेओअे जे प्रत परथी सम्पादन कर्युं हतुं ते ला.द. विद्यामन्दिरना हस्तप्रतभण्डारनी नं. ४७२८ वाळी प्रतनी Xerox पण साथे मोकली हती, तेना आधारे यथाशक्य संशोधन करीने अत्रे वाचना प्रकाशित करी छे.]

*

ॐ नमः श्रीजिनाय

॥ ढाल सिंधिनी ॥

सुखनिधानु जिनवरु मनि ध्याई, अनु सारद समरणि लिउ लाइ;
गाइसु गुण **आषाढ** मुणीसर, जसु चरित्र सब लोक सुखंकर... १
दान सील तप जप मण मोहई, व्रत सुनीम भावण करि सोहइ;
वणइ करउ तिन भावविहुणी, जिमी होइ रसवती अलूणी... २

भावण योगि ध्यान अध्यातम, परम ग्यान पावई तब आतम;
मुनि आषाढभूति निरमाई, करत नृत्य केवल सिरि पाई... ३
धण कण कंचण रयण समृद्धउ, **राजगृह** पुर नयर प्रसिद्धउ;
करत राज **सिंघरथ** सुविचक्षण, न्यायवंत सुविनीत सुलक्षण... ४
नवकल्पइं पुरि पुरि विहरंता, श्री**धर्मरुचि** सूरि तिणि पुरि पत्ता;
तासु सीस छइ जुगहपहाणू, नामि **अषाढभूति** गुणठाणू... ५

॥ दूहा ॥

रूपपराव्रत मोहनी, बहुविध लबधि भण्डार;
गुरु आदेसइं संचरइ, विहरण नयरि मझारि... ६
सोधउं ईर्यासमति, गज जिम गति माल्हंति;
विश्वक्रमा नट धवलगृह, तुंग देखि तिहां पत्त... ७
विहरि मुदक जाण्यउ इसिउं, मोटउं गुरुनइं अेह;
लबधि अजीरणि चिंतवई, दूजउ विहरउं तेह... ८
माया करि विद्यासु धरि, रूप कुब्जनउ कीध;
सुंदरि तिणि मंदिरि वली, धर्मलाभ जइ दीध.... ९

॥ जाति ॥

तिहीं धर्म्मलाभ जइ दीधउ, मोदक लोभइं वली लीधउ;
उवझाय तणु इहां भाग, त्रीजउ लेवा हिव लाग... १०
तिणि वडउ रूप निरमायउ, पुण त्रीजउ मोदक पायउ;
नान्हा चेलाऊं अेहु, विद्या साधी वलि तिहु.... ११
सुरकुमर समान अनूप, कीधउ योवनमइ रूप;
ते जि नटुई उत्तम भावइ, चुथउ मोदक विहरावइ... १२
बइठउ नटउ गउखि विनोदइ, कौतुक करि चित्त प्रमोदइ;
रिषि रूप करंतउ दीठउ, तब लोचनि अमीय पइठउ... १३

॥ वस्तु ॥

मनिहि चिंतइ मनिहि चिंतइ ताम नट अेम,
यहु नर्तक हुइ सुंदरु, गुणनिधान सोभाग सुंदर;
तब मुनिवरकुं इम भणइ, सामि अेह तुम्ह तणउ मंदिर...

मोदक सरस आहार जे, प्रतिदिन विहरउ आई;
तुम्ह गुणि मुझ मन रंजीउ, रिषिजी करउ पसाई... १४

॥ छपया ॥

तात भणइ धुय सुणउ, भुवनसुन्दरि जयसुन्दरि;
जंगम सुरतरु पत्त, अेह मुनिवर हम मंदिरि;
रूपपराव्रत पमुह सुगुण, बहु लबधि मनोहर;
रूपिसु रतिपतिरमण, अहव नलकूबरसोदर;
आवासि अम्ह राखउ सही, भक्ति युक्ति दाखी घणी;
तुम्हि रूपसक्ति जग मोहीयउ, कउण वात मांनवतणी... १५

॥ काव्य ॥

साहू मोयगलाहउ नडगिहं पत्तो दुइज्जे दिणे,
लोभेउं पडिपुन्नदाणवसउ(ओ) मोहं समुप्पाविउं;
दो धूया वि तया पियस्स वयणा काऊण सिंगारयं,
चिट्ठंतीउ मुणीसरस्स पुरउ सोदामिणीसंनिभा... १६
आदौ मज्जन १ चारुचीर २ तिलकं ३ नेत्रांजनं ४ कुंडलं ५,
नासामौक्तिक ६ पुष्फहार ७ करलं* ८ झंकारकृन्नूपुरं ९;
अंगे चंदनलेप १० कंचुक ११ मणी १२ क्षुद्रावलीघंटिका,
तांबूलं १४ करकंकणं १५ चतुरता १६ शृंगारकाः षोडश... १७

॥ गाथा ॥

अइनेहमाणिऊणं हावं भावं च संदिसंतीउ;
महुराअे वाणीअे, कुणंति विन्नत्तियं अेवं..... १८

॥ दूहउ ॥

कांमिणि मोहणवेलडी, आनंद हेतु अपार;
विषयसुख छई अमृतफल, भोगवि तूं भरतार... १९

* केशरचनाकरणं.

॥ सोरठउ ॥

अम्ह साम्हउ इकवार, जोइ सुधारस लोयणे;
रिखि तुं करुणभण्डार, पाअे लागइ पदमिनी... २०
वरषति घन असराल, श्रावणि विरह जगावतउ;
भोगवि भोग भुयाल, लील लही इणि मंदिरइं... २१

॥ अडिल ॥

दुझर रयणि अंधारि घनंबर छाईयई,
वर्षति धार अखंडसु प्रेम जगाईयई;
चातक सद्द सुणंति प्रीउप्रीउ सल्लीयई,
लहि **भाद्रवि** सुखविलास अनेथिन(?) चल्लीयई... २२
पुन्निमचंदकी झुन्ह जि मत्तनिल ग्रही,
ताप व्रिथा तब गाढ व्रिहानल ज ग्रही;
तब नीर निरम्मल साउ तंबोल असाइयई,
अरिहां! आसु कुंयारि महल्ल सुपुण्णइ पाईयई... २३

॥ चउपई ॥

तारुण तरुवर फल तजि म भोगा, तुम्ह वय जोवन कुणसु जोगा;
गीतनाद विषया रस चंगा, **कात्तिगि** प्रिय तुम्हि करउ सुरंगा... २४
अगहनि गहनि विथा अतिबाढई, व्यापति पंचबांण तनि गाढई;
कामिणि कंत विणा किम जुजई, रहिअ वासि हम कृपा करीजई... २५
पोस निसा प्रिययोगि विहावइ, दीपक जोतिअ वासि सुहावई;
सरस अहार सुरंग करेवा, भोगाउ मासि पुण्य फल लेवा... २६
पान पदारथ सुपुरुष अग्घा, जिहां जाइ तिहां मोल मुहुंग्घा;
हठ विवाद करती नहु सुंदरि, **माघ**मासि रहिवउ ईण मंदिरि... २७
फागुणि पवन चलइ मलयाचल, तीरपा हि तनि लगई समग्गल;
अंगि अनंग धखइ विरहानल, प्री विणु छार सिंगार समुज्जल... २८

॥ कुंडलिया ॥

चंदन घसि मलयागरुं, करउ विलेपन अंगि;
विजनि पवन सीतल लीयउ, **चेत्रि** सुभुवणि उत्तुंगि;

चेत्रि सुभुवणि उत्तुंगि, रंग नवला नितु किज्जई;
चंदन मृगमदपूरिं अगरु, रस अंगि लगिज्जई;
कुसुम सेज साथऱई, गीत गुण मन आनंदन;
तपति बुझई तनि लाई, दासी मलयागरु चंदन... २९
तरुवर फुल्लित फलित वनि, सुरभि कुसुम घन वास;
जलकण खेल खंडोखली, **माधव** मासि उल्हास;
माधव मासि उल्हास, कुहु क्कुहु कोकिल कूजई;
सुठु वसंत सुविलास, भमर मधुर ध्वनि गूजई;
लालगुलाल अबीर चीर, अच्छा तनि सुन्दर;
धन वसंत रितुराउ फलित, फुल्लित वनि तरुवर... ३०

॥ दूहा ॥

जेठि तपई सिरि सूरकर, कोमल छइ तुम्ह देह;
भिक्षा घरि घरि मांगिवी, पाअे अणुहाणेह... ३१
गयणि घटा घन ऊनयउ, धुरि **आसाढह** मास;
प्रिय प्रति भोज पठाईयई, कामिणि ल्यइं तउ सास. ३२

॥ गाथा ॥

गिम्हे चीर दुगंधो, सिसिरे कालंमि सीयसहणं च;
वरिसालइ पंकगाहण, पिय! संजमि किं भवे सुक्खं... ३३
अन्हाणमदंतवणं, मायाइविवज्जणं अधोवणयं;
असिधारमग्गचलणं, जायणवित्तीउ निच्चंपि... ३४

॥ झूलणा ॥

सुद्ध संजम महापंचव्रत पालिवा, लूण विण शिलतणउ स्वादु लेवउ;
वली जरवाणि अनिउन्ह आछणजलं, सूझतउ दोहिलउ ते मिलेवउ...
सरस रस गृद्धि नहु किंपि करिवी, किमई बाहु उवहाण धरिणी सुअेवउ;
भोग सुविलास विण जेह संजम लियई, तेह नरकुं कहउ कुंण हेवउ... ३५
कला चउसठि भरी अम्हे गुणसुन्दरी, दिवसनिसि तुम्ह गुणि चित्त लायउ;
मम करउ प्रांण तुम्हि जाणवरि स्युं हिवई, सरिस संजोग विधिई हु निपायउ...

नेह प्रियस्युं सही किंपि काचउ नही, वल्लहा जेम सारंग मेहा;
स्वारथइ इउं कलावंत पुत्री भणई, प्रीति कईठ उरि हठवाद केहा(?)... ३६

॥ गाथा ॥

हंसा राचंति सरे, भमरा रच्चंति केतकीकुसुमे;
चंदणवणे भुयंगा, सरिसा सरिसेहि रच्चंति... ३७

॥ जुडिल ॥

सुविलास प्रहेलि हियालि नवी, प्रिय गीत विनोद कला करिवी;
ईकवार नयणि निहाली अम्हा, हमि रूपकला गुण लीण तुम्हां.... ३८
जब तारकी तार अनुन्न मिली, सुवचन्न रचन्न जुगत्ति मिली;
सुमदन्न करई जोरि थयउ विकली, कृत कर्म उदिन्न थया भुगली... ३९

॥ दूहउ ॥

नयण बाणि वेध्यउ तिणे, आषाढभूति हतेम;
भेद्यउ दूहादिक वयणि, आमकुंभ जलि जेम.... ४०

॥ झूलणा ॥

इंद नई चंदनागिंद भुल्ला सहू, भुल्ल सुरअसुर हरिहर विधाता;
आद्रकुम्मार अरहन्न मुणिवर वली, नंदखेणादि भुल्ला विख्याता;
पवर नेपत्थ अरु रूप देख्यांत छई, मयणि नर बापुडा सुवसि कीधा,
कामयण करणनई विषयरस वाहीया, नारिलोयणि वयणि कुण न वीधा... ४

॥ दूहा ॥

विषय तणई रसि वाहीउ, सुकुल अकुल न मुणेई;
लज्जा छंडई आपणी, संजम व्रत न गिणेइ... ४२
पुच्छनेहि मंदिरि रहण, देई बोल मुणीस;
वंदण गुरु आदेसकुं, आवई धुरि सुजगीस... ४३

॥ वेलि ॥

सुजगीसई पंथि तुरंत चलंतउ, चंचल चित्त अपार,
जब अेणि परई गुरि आवत दीठउ, जाण्यउ कोई विकार;
गुरु साम्हउ आवि ईसी परि बोलई, आवउ दुःष्करकार,
तुम्हि जाण प्रवीण असूर कीयउ, कांई विहरण केरी वार... ४४

अम्ह वाट जोवंत भलई वछ आयउ, गुणगणधीरिम मेर,
चेला तुं विनय विवेक विचक्षण, कांई लागी वडवेर;
हम कारण आखि सवे विधिसुन्दर, सीससिरोमणि जाण,
विद्या बहु पात्र विसेषत जाणी, आदर मधुरी वाणि... ४५
वयणे तिणि रीस चटक्कि चड्यउ रिषि, लहुया बोलई बोल,
अलिवृत्ति घराघरि भिक्षा लेवी, तुम्हनउ छई सिरि टोल;
बलवंत गुरु गुणवंत परीसह, जीपेवा बावीस,
वछ भिक्षा अेकि परीसहि भिद्यउ, भाखई सुगुरु निरीस... ४६
राता मतवालसु सीष न मन्नई, लोपई लज्जाचार,
गुरु मेर विवेक विनई विधि छंडई, बूझइ नही गमार;
रिषि रीसभरइं त्रडक्यउ तब जंपइ, मूंकी मनकी लाज,
हितसीख तुम्हारी अे घरि राखउ, आज विषय हम काज... ४७

॥ गाथा ॥

मयणवसगस्स निच्चं, वाहिविघत्थस्स तह य मत्तस्स;
कुवियस्स मरंतस्स य, लज्जा दूरुज्झिया होई... ४८

॥ सिंधी गउडी ॥

अंगुलि मुखि गुरु सिर धुणई, सीसवयण सुणि कांनि;
बलि जाउं जिन भाखियई, अे सिद्धंतनइं मानो रि... ४९
वछ व्रत नवि भंजीयई, चउथउ ब्रह्म विसेषो रे,
विषय न रंजीयई..... आंकणी
मदन विषइ नवी गंजीयई, साम्हा जे झूझार;
ते नरनारी दास हुं, चरण नमुं ब्रह्मधारो रे... ५० वछ...
विसहर डंक्यउ नवि मरई, जई गारुड होईयइ;
नयणे जे नर डंकीया, विरला जीवइ जोइ रे... ५१ वछ..
भलपण कहि किमहु मिलई, नकुल अनई विसधार;
नरनारी ईकठा रहई, सील न हुयई तिण वारो रे... ५२ वछ...
नाचई हंस मिनी सिरई, कमल शिलातलि जांम;
नारीनर मिलिवई हवई, सील अखंड जु ताळो रे... ५३ वछ...

जाणउ कुंड क्रिसानुनउं, नारी तणउ जु रूप;
पुरुष पतंगी पडि मरई, अे छई विषय सरूपो रे... ५४ वछ...
बोधई गुरु मधुरी गिरा, सुणि वछ तुं सुविचार;
छंडी जईअे प्राणडा, खंडायई नहु आचारो रे... ५५ वछ...
सुक सेवाल आहार ल्यई, मासखमण तप पाख;
तापस सीलइं चूकिया, वेध्या नारि कटाखो रे... ५६ वछ...
हरि जीपई कुंजर दमई, अहिवसि करइ विनाणि;
भडिवायइ नारी तणइ, धूजई ते सपराणो रे... ५७ वछ...
पवन जेम चंचल मनू, वईरी विषई विकार;
रहनेमि प्रीति फंदई पड्यु, अउर कुण मोह्या न नारि रे... ५८ वछ...
गुरु जाणइ विहरण दोहिलउ, सहिवउ परम अपार;
सीस तणउ मन तिणि फिस्यउं, न जाणइ अंतर सारो रे... ५९ वछ...
सीस भणइ गुरु संभलु, विषमु संजमवास;
सुख मीठां कमला लही, भोगवउ बारह मासो रे... ६० वछ...
दान भोग लीला करई, ते नर सफल संसारि;
कमला फल सुख भोगिवउं, सो मुझ लागई उदारो रे... ६१ वछ...
सीष सुहित सहगुरु भणई, सरस वचन वईराग;
परमानंद लय पाईयई, साचु संजम मागो रे... ६२ वछ...
उपसमरसमई झीलिवउ, मुनिवरकुं सुख जेह;
राग दोस भरपूरीयउ, चक्रवर्तिकुं नवि तेहो रे... ६३
वछ व्रत नवि भंजीयई, चुथु ब्रह्म विसेषो रे,
विषय न रंजीयई...

॥ गाथा ॥

तणसंथारनिसन्नो, मुणिवरो भट्ठरागगय(मय)मोहो;
जं पावई मुत्तिसुहं, कत्तो तं चक्कवट्टी वि... ६४

॥ सोरठा ॥

श्रावणि मासि उल्हास, इक संजमि रस लाईयई;
करि तुं योग अभ्यास, सुपंचेइंद्री वसि करी... ६५

भाद्रव मासि रसाल, जलधर जल जिम वल्लही;
जिनवर वाणि विसाल, पान करे श्रवणंजलई... ६६

॥ कुंडलीया ॥

आसा पूरि कुंयारि सब, तप जप सीलविनाण;
विषयसुख दुःख सारिखा, फल किंपाक समाण...
फल किंपाक समाण, विषई पंचे दुःखदाई;
सो दुःख मेरु समांण, सुख मधुबिंदु सुराई;
विषयमोहि संभ्रमई, नरय निगोद निवासा,
तिणि वईरागई लीण, पूरिक्कारणि सब आसा... ६७
कत्तिगि मयण म रच्चि रे, कामविद्ध दसवत्थ,
कामिणि दुरगति दीपिका, कवडकुडी अपसत्थ;
कवडकुडी अपसत्थ, कलह कज्जलकी कूंपी;
अहनिसि असुचि भंडार, निरय कारण आरोपी;
मंड्यउ पास अयाण जाण, भुल्लणकी भंतिग;
तजि अकत्थ यहु नारि मयण, मत रच्चई कत्तिग... ६८

॥ अडिल्ल ॥

कामिनि काय अरण्ण कुच ग्गिरि तुल्लियई,
मन्मथ भिल्ल सुचोर तिणि व्वनि भुल्लियई;
मानस पंथिम जा हुई तउ हित सिक्खियई,
सुणि हां रे **अगहन्नि** सुध्यनि धरी मन रक्खियई... ६९
क्रीडति अउरण दोससुं अउर निरक्खही,
बुल्लति अउरण चित्तकि चिंतित रक्खही;
चंचल नेह पतंग सुहाउ विरच्चही,
अरिहां **सुपोसि** मुणीस अवाउड नारि न रच्चही... ७०

॥ छपया ॥

चंदबिंब सिरि वयण नयण पंकजदल तुल्लई,
दाडिम दंत सुपंति, वचन अमृतरस बुल्लई;
अधर प्रवाल सुरंग, चंग खलकति करकंकण,
रूपि रंभ मनहरण, सबे शृंगार सुलक्षण;

सुठु पीणपयोहर पदमिनी, कटितटि मृगपतिकटि जिसी,
धन तेह तरुणि तज्जई ईसी, **माघि** ध्यान धरमई वसी... ७१
कहई जु अमृतवल्लि, कामिजण तुल्लइ समारइ,
नारि अछई विसवल्लि, तिल्लमक्खी जिम मारई;
सुच्चिय सूर सुजाण जेह, रमणी न निहालई,
रक्खई सील संजोगि वसं, अप्पणु उजवालई;
जिणि अग्गि योगि कालिम नही, कनक जातिवंतु गुणई,
फग्गुणई धजा जिनवर वयणि, रमई रंग संजम तणई... ७२

॥ झूलणा ॥

अेहु चारित्त अति पुण्य मति पाईयई, रयण चिंतामणी जेम साचउ;
कागउड्डावणी कांई वछ तुं गमई, विषई सुई कच्च जिम अछई काचउ;
नेह कृत्रिम परिसुद्ध जिणध्रम्म धरि, होई परलोकि अविहड सखाई;
चेत्रमई चेति तुं चित्त चंचल म करि, ध्यानि भगवंत लई सुदृढ लाई... ७३

॥ जुडिल्ल ॥

जिन सासन काननमई जाईवउ, उपसम्म खंडोखलियई न्हाईवउ;
व्रत लाल गुलाल अबीर जिसिउ, करि **माधव** मासि वसंत ईसिउ... ७४

॥ घत्ता ॥

जो सुव्वई खंडई अप्पणु भंडई, णंत काल तिणि भवि भमइअे;
ईम जाणि सुभावणु करि आयावणु, **जेठि** जिट्ठ वयरसि रमईये... ७५

॥ दूहा ॥

कट्ठ करत सुख उप्पजई, सुणि आहरण किसाण;
धर्मध्यान जिणि दिनि हवई, सोई **आषाढ** प्रमाण... ७६
उपसमरस वईराग मई, **बारह मास** जगीस;
मधुर वाणि गुरु सीखवई, हितकरि विश्वा वीस... ७७

॥ गाथा ॥

संसारे हयविहिणा, महिलारूवेण मंडियं पासं;
बज्झंति जाणमाणा, अयाणमाणा वि बज्झंति... ७८
उत्तमकुलसंभूओ, उत्तमगुरुदिक्खिओ तुमं वच्छ!;
उत्तमनाणगुणड्ढो, कह सहसा ववसिउ(ओ) अेवं... ७९

॥ राग केदार गउडी ॥

धन तनु योवन चंचल्ल जी, आऊ अथिर सुजाणी;
कुलवंत संजम नवि तिजई जी, धुरंधर धुरा प्रमाणी... ८०

गिरुआ वछ संजम छई जगि सार
चेति चेतन चिति आपणइ जी
विरूयउ विषई विकार... गिरुआ... (आं०)

भाखई रिषि संभलि गुरु जी, विहरण गयां विसेषि;
वेध्यउ मनमेरउ सही जी, नटुई रूपवेस देखि... ८१... ग.
सामा सुन्दर जोवनी जी, चउसठि कला निधांन;
सतवंती गुण आगली जी, छे बे नारि प्रधांन... ८२... ग..
गुरु पभणइ वछ जाणीयउ जी, ताहरउ चित्त विकार;
अकुलीणी किम सेवियई जी, वेश्या दासी नारि... ८३... ग...

॥ गाथा ॥

वेसा दासी इत्तर-परंगणालिंगिणीण सेवाउ;
वज्जिज उत्तरोत्तर, अेसिं दोसा विसेसेण.... ८४

॥ ढाळ ॥

नारि घणा नर भोलव्या जी, पाड्या संकटे हासि,
रावण मुंज भमाडीया जी, म परे परथी पासि... ८५
कच्चूल नर कंडू खणई जी, वेदई दुःख सुख जेम;
कामरसइं मोह्यउ गिणई जी, विषयां दुख सुख तेम... ८६
कामी नर पामइ इहां जी, बंधन कारागारि;
परनारी रसि दुख लहई जी, परभवि नरय मझारि... ८७
कहई आषाढ रहिस्युं नही जी, न रुचई तुम्ह उपदेस;
जाईसु तिणि मंदिरि सही जी, द्यउ हिव मुझ आदेस... ८८

॥ दूहा ॥

गुरु भाखई थंभई कवण, सायर लोपई कार;
आतम मर्यादा तिजई, तउ कुण राखणहार... ८९
अन्नाणह उवअेसडउ, निष्फल होई न भंति;
पाणी घणुं विरोली(लोवी)यई, कर चुप्पडी न हुंति... ९०

॥ गाथा ॥

उवअेससहस्सेहि वि, बोहिज्जंतो न बुज्झई कोई;
जह बंभदन्तराया, उदाईनिवमारउ(ओ) चेव... (उप.मा.) ९१

॥ सोरठा ॥

गुणियणहुं सर तांह, लाउं पिणि लागई नहीं;
पग लगि पाखर जांह, आडी अजाणपणा तणी... ९२
इणि न धर्यउ उपदेस, तउ अकयत्थ म जांणिजे;
चंपक कुसुम निवेस, अलि तजीयउ अप्रमाणस्युं... ९३

॥ कुंडलीया ॥

कर्म नटावउ नच्चवई, जिउकुं विवह प्रकार;
सुख देई दुख दाखवई, दुःख द्यउ सुख अपार;
दुख द्यई सुख अपार, चडई श्रेणी उपसमरसि;
पाडई कर्मविपाक आणि, आतम अप्पण वसि;
चिहुं गति रुलई प्रमादि, चउदपुव्वा गुणठावउ;
ईणकी केही वात, नच्चवई कर्म नटावउ.... ९४

॥ गाथा ॥

जूअेण जुव्वणेण य, दासीसंगेण धुत्तपिम्मेण;
उब्भेउ अंगुली सो, अवसाणे जो न विग्गुत्तो... ९५

॥ दूहा ॥

असुभकर्मि श्रुत नवि गिणई, अमृत भी विष जोइ;
गुरु उपदेस लग्गइ नही, सुभकर्मइ सुख होइ... ९६

॥ जति ॥

सुभकर्मि करी सुख होइ, बलवंत कृत क्रम जोइ;
नारीनर किंकर कीजइ, क्रमि दोस किशाकुं दीजई... ९७
अंगुलिकइ अग्गि नचावइ, त्रिभुवन वसि कीध सभावइ;
बलीया सुर दानव ख्यात, तु मानवकी कुण बात... ९८
जु करावइ तिम करीजई, नारी राखसी कहीजइ;
खांचइ जिणि दिसि तिहां जावइ, नरनाथ बधउ तृष आवइ. ९९

अंध(धे) नट बहिरे गीयं, उखरखित्ते जिम बीयं;
कामिणी कडक्ख नपुंसई, निष्फल सुवचन इणि सीसइ... १००

॥ पद्धडी ॥

इणि कुलि वछ कीजइ सुरापाण, आहार मंस जिणि नरयठाण;
ते परिहरि जे गुरुआ सुजाण, हम गुरुकुं देजे इहु सुजाण... १०१
गुरु सिक्कउ मन्नेइ तउ सार, पट अंतर इतनउ हइ उदार;
अंजलि सिरि सीसइ धरी आण, लज्जा गुरि जाणी छई विनाण... २
दीजइ लज्जा करि बहुत दान, लज्जा नवि लोपइ कुलभिमान;
लज्जा वलि पामई धर्म्मयोग, लज्जा गिणिजइ सउ सज्झ रोग... ३
जब करिस्यई मंस सुरा अहार, नवि रहिस्युं तब मुझ इतीकार;
वीनवी अेम गुरु वंदि भाई, तिणि मंदिरि रहण अषाढ जाइ... ४

॥ ढाल ॥

वाट जोती वालंभनी जी, बइठी गउखि अवासि;
आवत दीठउ दूरथी जी, नटधुय थयउ उल्हास... ५
भलई प्रिय आयउ ईण घरिबारि, सुरतरु कल्पउ अपार... भ...(आं०)
कामिणिनइं दासी कहइ जी, प्रियआगमन विचार;
मोतीजडित वधामणी जी, द्यउ लाखीणउ हार... ६... भ.
दक्षिण चीर विछावहु जी, वाती खेवउ धूप;
माणिक चउक पूरावहु जी, फूल पगरस्युं अनूप... ७... भ.
सकल सोभागिणि हमि सही जी, जब आयउ भरतार;
जोवनतरु सुखफल लीयउं जी, करिन सोल सिंगार... ८... भ.
गावई गीत मधुरसरइं जी, प्रगट्यउ पुण्य पयार;
आषाढभूति पधारीया जी, बेवि वधावई नारि... ९... भ.
नृत्य करई नवरंगस्युं जी, घुग्घरि पय घमकार;
ससिवयणी मृगलोयणी जी, सुरसुंदरि अवतार... १०... भ.
नारि मनोरथ पूरवउ जी, हमि तुम्ह परउ संजोग;
रहउ अेणि मंदिरि तुम्हे जी, भोगवउ नव नव भोग... ११...भ.
रिषि भाखई भामिनि सुणु जी, वयण अम्हारउ अेक;
सुरा मंस जो टालिस्यउ जी, रहिवउ ताम विवेक... १२... भ.

देखिसु जब करती सही जी, मदिरा कुणिम आहार;
वाचा माहरी पालिस्यूं जी, न रहिस अेणि अगारि... १३... भ.
मद्यादिक मत आचरउ जी, नर्त्तक कहई पडूर,
प्रभु आखई तिम तुम्हि करउ जी, अेह प्रतिज्ञा सूर... १४... भ.

॥ ढाल ॥

कुणिम सुरा हमि टालिस्युं, करिस्युं वचन प्रमाणू अे;
वाच लेई तिणि घरि रहिउ, आषाढभूति सुजाणू अे... १५
भोगकरमि सुख भोगवई, पासा रामति सारि अे;
अवगणि गुरु व्रत तजि करी, परणइ बेवे नारि अे... भो...आं०
मनोहर काच ढलाईया, जसु नवलखा सुरेखू अे;
महल मंदिर अनई मालीअे, विलसइ सुख विसेषू अे... १६...भो.
पहिरि पटउली कामिनी, उरवरि कंचुकी हारू अे;
नाह सुरतसुख माणही, षटरस करइ आहारू अे... १७... भो.
कपूर सुवास तंबोल ल्यई, गीत सुहास विनोदू अे;
सुखसागर माहे कीलतउ, सुकुसुमह सेजि प्रमोदू अे... १८... भो.
विषय पंचेइंद्री तणा, तनि तनु मन सुख चीरू अे;
केसर चंदन मृगमदू, अगर गुलाल अबीरू अे... १९... भो.
आस पूरई सुकुटुंबनी, रतिपति रूप अनूप अे;
मेलई लाछि कला घणी, मान दीई तसु भूपू अे... २०... भो.

॥ चउपई ॥

बहुत काल तिणि मंदिरि रहई, लीलविलास करई सुख लहई;
चालई कार सहू परिवार, पुण्य पचेलिम तणउ प्रकार... २१... भो.
अन्न दिवसि परदेसह थकी, आव्या कलावंत नाटकी;
अति अभिमान सभामइ करई, हमकुं कुण जीपई पण धरई... २२
राय आदेस लही सुजगीस, चाल्यउ तसु जीपिवा मुणीस;
बहु नट परिवरीयउ अभिराम, पहुतउ भूप समीपई जांम... २३
निर्व्यंजन निर्भय जाणीयउ, मूल सभाव प्रगट तिणि कीयउ;
पूठि रहसि ईच्छाचारिणी, वारुणि पान करई पदमिणी... २४

यत्न करीजई बहुत उपाय, तउ हि न मिटई मूल सहाउ;
टाढि न उसहसहज पालणउ, अउखाणउ साचउ जनतणउ... २५

॥ श्लोकः ॥

प्रकृतिश्च स्वभावश्च, न मां मुञ्चति राघव!;
अहं प्रकृतिं मुञ्चामि, सा मां नैव मुञ्चति... २६
परीक्षणीयो यत्नेन, स्वभावो नेतरे गुणाः;
अतीत्य हि गुणान् सर्वान्, स्वभावो मूर्ध्नि वर्त्तते... २७

॥ चुपाई ॥

मूल प्रकृति जेहनी जिसी, छंडि उपाधि होई ते तिसी;
वायस विष्टायई तुष लहइ, उच्च छोडि नीचई जल वहई... २८

॥ ढाल ॥

भूप पसाउ लही करी, बाजइ ढोल नीसाण;
धवल मंगल गीत गाइयइ, सवि करइ वखाण... २९
नट जीपी घरि आवीयउ, आषाढ मुणिंद;
रागरंग नारि तणई, मन मई आणंद.... न. (आं०)
पहतउ रंगमहल्ल मई, मदविह्वल नारि;
चीररहित धरती परी, नवि मानी कार... ३०... न.
चेत विसंठुल वल्लही, पेखी सविकारि;
विषयरागि विरतउ थयउ, जाग्यउ हीयई मझारि... ३१... (न)
विना लाज प्रलपई मुखइ, नवि विनय विवेक;
तत्त्वनाण मदिरा गमई, वड दूषण अेक... ३२... (न)
मूकी चाल्यउ कामिणी, वारुणि घूमंत;
सूरपणउ चिति चेतीयउ, वईराग धरंत... ३३... (न)
वचनमेरु लोपी ईहां, रहिवा नही लाग;
छेह जाइ हिव साधुस्युं, सिव केरउ माग... ३४... (न)
साचइ जातउ जाणीयउ, जईसई भरतार;
गहिलपणउ मद ऊतर्यउ, थई आकुली नारि... ३५... (न)
विषयसार जाणइ नही, सह्यउ विरह न जाइ;
प्रिय प्रिय उच्चरती मुखइ, पति पूठि पुलाई... ३५... (न)

तुम्ह विरहई हम विरहिणी, हम कछु न सुहाई;
करई वीनती विलवती, प्रिय विरह गमाई... ३७... (न)

॥ सोरठा ॥

अेतउ मागां मांन, रुष प्रणमंत वखाणीई;
द्यउ हम जीवियदान, वड अपराध न को कीयउ... ३८
मच्छली जल विण जेम, टलवलती क्षणमई मरई;
हम परि जाणउ तेम, नेह तुम्हास्युं छई खरउ... ३९
हिव मुनि भाखई अेह, जईसउ राग पतंति(गि?)उं,
चंचल नारी नेह, जईसी बादल छांहडी... ४०
जईसउ ठारइ त्रेह, जईसउ राजाहू बलउ;
झटकि दिखाडई छेह, ते नारि किम सेवीइ... ४१

॥ कुंडलीया ॥

सीख पियारा श्रवणि सुणि, वयण अेक अवधारि;
गुन्हउ अेक बगसउ सही, अउर न करुं विगार;
अउर न करुं विगार, नारि गुणरागिणि तेरी;
सुन्दर सरल सहाउ, जिसी अनुगारिणि(रागिणि?) चेरी;
मृदुभाषिणी सलज्ज चित्त, तुम्हस्युं न विकारा;
परणण अवरह नीम, श्रवणि सुणि सीख पियारा... ४२
नारी चित्त न को लखई, चरित न लाभई अंत;
वंसजाति जईसी गुपिल, देखि आखु भयभ्रंत;
देखि आखु भयभ्रंत, सापदेसु यई उसीसई;
देहलि लंघणि दुःख, चलई गिरिसिखरि जगीसई;
दुरगति दुखदायिका, कूडकवडी सविकारी;
मुनि पभणइ अतिजोर, चित्त को लखई न नारी... ४३

॥ चउपई ॥

आवहु मंदिरि सामि रमीजई, गरुया पत्थणभंग न कीजई;
लोपणकार हिवई अम्ह कोसो, पायपाणही स्युं कुण रोसो... ४४
अमृत ईसी चीजई जइ निंबू, कडुय छंडि थाई नवि अंबू;
दूधई धोयउ वायस जोई, मुनि पभणइ तउ हंस न होई... ४५

तजि व्रत रत्ता विषयविकारइ, कामिनि कहति ति कज्ज न सारई;
विना भोग टालिसु किम काल, तीर न नीर लहिसु सुकमाल... ४६
छेहि जेह संजमरसि रत्ता, पावई मुगति भवई नहु खुत्ता;
सो संजमहि खरउ सुहावई, कपि वईराग चित्ति नहु आवई... ४७

॥ गाथा ॥

पच्छावि ते पयावा(या), खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं;
जेसिं पिउ तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं च...(दसवे०) ४८
अप्पेण वि कालेणं, केई जहागहियसीलसामन्ना;
साहंति नियकज्जं पुंडरियमहारिसिव्व जहा...(उप.मा.) ४९

॥ अडिल ॥

सेज सुहेज पल्यंक पटउलि बिछाईयई,
चित्रविचित्र उलोच सुधाम वणाईयई;
दीपकजोति फुरंत अवासि रहीजीयई,
भामिनि भोगवि भोग सुरागई रीजीयई... ५०
सव्वअधारण भूमिसयण सुरूअडउ,
व्यापक व्योम विसेषि अभंग चंडूअडउ;
चंद दिवाकर दीप सुधान महल्लमई,
संजम नारि विनोद विरागि यती रमई... ५१

॥ कवित्वं ॥

खल गुल अेक म करउ, निगुण न हुयई सहु नारी;
सबह पटंतर जोइ, सरिस अंगुली न सारी;
चंदन विरहिणि दहई, फुल्लकी चाल भुयंगम;
लावण्य लील भुयाल, करउ करुणा इतनी हम;
चीतवां चित्ति तोरा सुगुण, चंद चकोर जि संभरई;
अविहड सुप्रेम साहिब सुणउ, बाहुडि आवउ ईणि घरई... ५२
माया मुझ भोलायउ, अेक कामिणि ठगसूरी;
रंगई करई विरंग प्रेम, चंचल क्षणि पूरी;
वायसुडावणि हारमइं जु, नाख्यउ चिंतामणि;
चंदन कीधउ छारमई जु, कोईलाकि कारणि;

तजि अेह नेह नारी तणउ, नारि दुःखकारण घडी;
करिस्युं सनेह अविहड मिलई, संजमसिरिस्युं प्रीतडी... ५३

॥ दूहा ॥

मातपिता कामिणि वली, सासू सुसर धुरीण;
अे कुटुंब किम छंडीइ, सगपण विण अकुलीण.... ५४
धर्म पिता जननी क्षमा, सुसरउ संजम रूप;
सासु धृति कामिणि दया, मुनि इहु कुटुंब अनूप... ५५
स्मर भिल्लडइ लगाइ तनि, विरहअनल विकराल;
भोगजलइ सुबुझाइ तुं, हम तुम्ह नृपति विसाल... ५६
भव अनंत मई भोगव्या, सुरवरसुख बहुवार;
पाम्यउ नारिसंजोग वलि, तउहि न तृपति अपार.... ५७

॥ द्विपदी ॥

प्रीति वेलि उर मंडवंमि, लहलहई मणोहर;
सीचि विलास जलेण, जेम उल्लसई निरंतर;
मानि ईतउ हम वयण, कहइ कामिणी विचारी;
राग अछई सुखकंद जिहां, मनमोहण नारी... ५८
कीधउं विद्याज्जांण, लहुवय लगि हुं लाल्यउ;
सुगुरु न मन्नी सीख, तासु मई वयण न पाल्यउ;
विषईरसई वाहीयउ, ताम आण्यउ वसि मयणई;
दीठउ नयणे तुह सरूप, न पतीजुं वयणई.... ५९
कोकिल कुहु कुहु करई, नाद केकी न सुहाई;
प्रीउ प्रीउ चातक चवई, विरह विरहिणी जगाई;
तुम्ह गुणि मन मोहीयउ, जेम महुयर वणराई;
आवी कंत अेकवार, विरहकी तपति बुझाई.... ६०
साचउ जासु सरूप विरह, कबही नवि थाई;
मुगति नारि पामीयई, जेणि संजमि लय लाई;
दीधउ चारित छेह, पापमइं कीयउ प्रसंगो;
नरय तिरिय गति रोधि, करिसु हिव चारितरंगो... ६१

॥ दूहा ॥

अडिल कुंडलीयादिक वयणि, कीयउ अनुन्न संवाद;
मुनिवर मन जाण्यउ खरउ, छोडई सही प्रमाद.... ६२
केम करु प्रतिबंध छई, कूडउ भाखइं सोई;
जेहनउ मन साचउ जिहां, राखि न सक्कइ कोई.... ६३

॥ ढाल ॥

लालिपालि चरणे नमई साहेलडी हे, याचई जीवनउपाय,
करि अंजलि नारी कहई साहेलडी हे, वीनती सुणि मुनिराय;
वीनती सुणि मुणिराय तईसउ, करउ नाटक अेक,
जिणि भूप अधिकउ दान आपइ, अेह तुम्ह विवेक;
परिवार कामिनि सुखी थायइ, कुटुंब चिंतासार,
जाइवउ करिज्यो पछइ सामी, वीनती अवधारि... ६४
वईण दाखिनि दिन सातकउ सा० मानि सभाई जाई,
भाखई ईक देखउ कला सा० साधन द्यउ हिव राय;
हिव राय पात्तुवगरण भूषण, देई तासु सुजाण,
भरथेसर चक्री तणउ नाटक, कर्यउ भाव मंडाण;
पंचसइ राजकुमार मेल्या, रूपिं देवकुमार,
रिधि रची भरथ नरेसनी, सवि अंतेउर परिवार... ६५
चक्र उपन खंडसाधना सा० जईसई राजभिषेक,
वेस करी तिम दाखीउ सा० मोह्या पुरुष अनेक;
मोह्या जुजु पुरुष अनेक, भूपति बईठा जोयई रंग,
नाटकीया अति सरस गाई, वाई वाजिंत्र चंग;
तत धेंगि धेंगि निसरगमपधुनि, पात्र ऊचरई नाद,
त्रिभुवन कौतुक करी विस्मित, गयउ तसु विखवाद... ६६
अनुक्रमि दर्प्पणगृह रच्यउ सा० कीध सिंगार विसेस,
बईठ सिंहासनि रिषि जइ सा० आपु थई भरथनरेस;
आपु थई भरथनरेस निरखई, अंगि सयल सिंगार,
मुद्रिका एक जु धरणि नांखी, ताम तेणि विचार;

अंगुली तिण विण थई अलूणी, चड्यउ भाव उदार,
आभरण जे जे मुणि उतारई, तिह न सोभ लिगार... ६७
देखी तेह अनित्यता सा० वईरागई भरपूर,
अहु ईहु काया कारिमी सा० अंतर असुचि अंकूर;
अंकूर अंतर असुचि काया, बाह्य मंडित सार,
पोखतां न हुयई आपणी, अे जिसउ लीपणछार;
घणकर्म छोडि अपुव्व चडीयउ, तेरमई गुणठाण,
भरथनी भावनि ईसी उज्जल, लह्यउ केवलनाण... ६८

॥ गाथा ॥

जव जविअे तव तविअे, बहुविहकालेण हुंति सिद्धीउ;
निद्दहई कम्मजालं, झाणेण ततक्खणा सिद्धी... ६९

॥ ढाल ॥

वेस लेई पद्मासनि बईठा, करत वखांण सुगाजई;
लोकालोक पदारथ भासई, भवना संसई भाजई जी... ७०
सो जयउ आषाढ मुणीसर, राजादिक प्रतिबोधई;
पात्र हुंता नृपकुमर पंचसई, ते दीखई मन सोधई जी... ७१... सो. (आं०)
नाटक तणई काजि जे आव्या, वईरागि दीख ग्रहंतां;
कुमर पंचसई थया केवली, मुनि भावना धरंता जी... ७२... सो.
तद्भवमुक्तिगामि अे मुनिवर, सुविहित गुण आचारई;
कर्म उदय व्रत छंडी रहीयउ, नाटकणी घरबारई जी... ७३... सो...
कुटुंब दविण काजई नृप आगलि, नाटक रच्यउ मंडाणू;
सुकृत कर्म महिमा वलि तक्खण, पाम्यउ केवलनाणू जी... ७३... सो...
महिमंडलई विहार करई बहु, भविक लोक उपगारु;
सीसवृंदि परिवरीयउ सोहई, पंचसयां परिवारू जी... ७४... सो...
राजकुमर मुगतइं ते पहुता, सुगुरु लही सिरताजू;
खय करी कर्म अषाढ जतीसर, पुण पामइ सिवराजू जी... ७५... सो.

॥ ढाल ॥

भावण आषाढभूतिनी, धन तसु परिणाम;
भरथ नाटक नाचंतडां, लह्यउ केवऴ नाम... ७६

धम्मि भली छई भावना, तप जप व्रत सील;
दान पुण्य भावई कीयउ, आपई सिवलील... ७७
जिनवरेई कालई भलई, हूयउ गुणह अगाध;
कुसंग तजी नाम ले करी, वंदउ अे साधु... ७८
खरतरगछि वाचक थयउ, **मतिवर्धन** नाम;
मेरुतिलक तसु सीस जे, गुणगण अभिराम... ७९
तसु सुविनेय गुणी अछई, **दयाकलस** मुणीस;
तासु सीस रंगई कहई, **साधुकीरति** जगीस... ८०
सोलह चउवीसई (१६२४) समई, **योगिणिपुरि** ठाण;
कीयउ विजयदसमी दिणई, यहु चरित विनाण... ८१
अे प्रस्ताव मनोहर, नवरस संबंध;
साधुकीरति मुनिवरि रच्यउ, **अषाढप्रबंध**. ८२
पापड गोत्रइ परगडउ, श्रीवंस **श्रीमाल**;
साहतेजपालि करावीयउ, संबंध रसाल.... ८३
लहिस्यई सुख जे गावस्यई, नरनारी वृंद;
कुसल मंगल अविचल धरइ, सुणतां आणंद... ८४

इति मायापिंडग्रहणे श्रीभावनाविषये श्रीआषाढभूतिऋषिप्रबन्धः समाप्तः ॥
मुनिगुणजीलिखितं ॥

—x—

मुनिश्रीनेमिकुंजर-कृत
गजसिंहरायचरित्ररास

— सं. किरीट शाह

[गुजराती साहित्य कोश, पृ. २२७ तथा जैन गूर्जर कविओ - १.२१० मां जणावाया मुजब मुनिश्रीनेमिकुंजर द्वारा सं. १५५६नी जेठ (प्रथम) शुदि १५ना दिवसे प्रस्तुत कृति रचाई छे. सं. १७०८ना वर्षे लखायेली रतलाम भण्डारनी प्रत उपरथी प्रस्तुत कृतिनुं सम्पादन थयुं छे. ४००थी वधु कडीमां पथरायेला आ रासमां गजसिंहकुमारनुं शील-सदाचारना पालनना महिमाने वर्णवतुं चरित्र गुंथायुं छे. रासना ४ खण्ड छे. जेमांथी २ खण्ड अत्रे प्रकाशित कर्या छे. बाकीना २ खण्ड भविष्यमां प्रकाशित थशे.]

*

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

॥ दूहा ॥

पास जिणेसर पाय नमी, तेवीसमउं जिणंद,
सेव्यो सुख संपइ(द) दीइ, प्रणमइ सुर-नरइंद... १
कासमीर मुख मंडणी, समरी सरसति माय,
सील तणा गुण वरणवुं, गाउं **गजसिंघ** राय... २
नव रस नव रंग वरणवुं, शास्त्रमांहि जे होइ,
वीर कथा रस वरणवुं, तं निसुणो सहु कोई... ३

॥ चउपई ॥

महिमंडलि छइं **मालव** देस, जिहां **उजयणी** नयर नवेस,
गढ मढ मंदिर पउलि पगार, वसइ नगर नव जोयण बार...४
राज करइ **जयसंघ** भूपाल, न्यायवंत अरिभंजण काल,
परदुःखकातर सूर सुजाण, नित पालि जिनवरनी आण... ५
तस घरि राणी **कमलावती**, रूपें करी रम्भा जीपती,
प्रियसिंउ धरती प्रेम अपार, सुख भोगवइ निरंतर सार... ६

अेक दिवस नीस [१]पउढी बाल, पेखइ सुपन सार सुविसाल,
गयवर सीह दोइ दीठा जिसइ, प्रह विहसी स्त्री जागी तिसई... ७
ऊठी रमणि हरख मन धरइ, धरम ध्यान सविसेषें करइ,
जई वीनवीयो निज भरतार, स्वामी सुपन अनोपम सार... ८
निस[२]भरि जाणुं गज नइं सिंघ, मई दीठा घरि करता रंग,
सुणि वचन राजा गहगहइ, हीयइ विमासी राजा कहइ... ९
होसे पुत्र घरें गुणवंत, राजधुरन्धर निं बलवंत,
राणी उव(द?)रिं[३] हूवो अवतार, दीनदिन ओछव जयजयकार...१०
पूरिं मास सुत जनमीयों, राअें ओछव अति बहु कीयो,
नगरमांहि सहु हरख्यो ठाम, जगसिंघ कुमर दिवास्यो नाम... ११
जिम जिम वाधइ कुमर सरीर, तिम तिम बहु गुणनिध गम्भीर,
पांच वरस हूवा जेतलइ, भणवा मूक्यो सुत तेतलई... १२
सीखइ ते सास्त्र अतिसार, कला बहुत्तरि लखिण सार,
गुणवंत पूरुं सुरवहू, तस वखाण करइं जन सहू... १३

॥ वस्तु ॥

अेणि अवसरि अेणि अवसरि नयर उजेणि,
कोई [४]वदेसी आवीयो, सूत्रधार सहु कला जाणइ,
मोर अेक रूडो घडी, राजसभा ते भेट आणइ,
ते देखी चित्त रंजीयो, इम जंपइ ते राउ,
अे जे जीवंतो करई, तस दिउ बहुत पसाँओ... १४

॥ दूहा ॥

इसी वात तिणि साम्भली, तव बोलइ सूत्रधार,
विप्र अेक धारा नयरि, जाणइं विद्या सार... १५
राय वात तव साम्भली, तव मोकलीयो दूत,
धारानयरि ततखिण गयुं, विप्र घरिं पहूत... १६
दूत भणइं विप्र निसुणि, तेडइ गज(जय?)सिंघ राइ,
विद्या ताहरी सांभली, आपइ अधिक पसाइ... १७

१. सूती २. आखीरात ३. पेट ४. विदेशी ५. प्रसाद, दक्षिणा

विप्र मन हरख्यो घणुं, तव उजेणी पहूत,
रंगे राजा भेटीयो, आदरि दीध बहूत... १८
राय भणइं विप्र निसुणि, करि जीवंतउ मोर,
कला प्रगट करि ताहरी, तूं छउ विद्यापूर... १९

॥ चउपइ ॥

विप्र भणइं राजा अवधार, विद्या सार अछि संसार,
भाग विना नवि लाभइ देव, यह वात तुम जाणों हेव... २०
आण्या [१]अखित जपिंवा मंत, केसरसिउ तिण लिखीयो जंत,
आडंबर मांड्या अति घणा, कुस(सु)म अणाव्या कणियर तणा... २१
आडंबर कीजइ इणि ठाणि, स्त्री राजकुली सुसरा जाणि,
गामसभामहि वयरी देख, आडंबर कीजइ सुविसेष... २२
कीयो जंत्र मांडीनइं मंत्र, कीधी विद्या सघली तंत्र,
करी जंत्र कडिं बांधीयो, तेतलई मोर सजीवुं थयो... २३
राइं बांभण मान्यों घणुं, दालिद्र काप्यो तेहू तणुं,
अम्बर ऊडइ [२]अधरां [३]भिडइ, जंत्र छोडइ तव हेठो पडइ... २४
राअें विद्या दीठी सार, तव तेड्यो गजसंघ कुमार,
रमवा कारण आप्यो सही, महिमा विध सघली ते कही... २५
तव हियडइ चिंतवइ कुमार, अेह विद्या मुझ आपी सार,
लेई पांजरुं ठवयो मांहि, निसभरि पउढ्यो कुमर उछाहि... २६
राति बि पुहुर थई जेतलइ, कुमर सजग थयुं तेतलई,
अबला अेक रोवंती सुणी, मुख जंपइ हूं अभागिणी... २७
सुणी सबद ऊठीयो कुमार, कर लीधुं ततखिण हथियार,
भांजुं दुःख अे अबला तणों, तउ सही साचुं [५]राउतपणों... २८
लेई सबद तणुं अणुसार, राय उलंघ्या पउलि पगार,
दीठी अबला वन अेकली, आयो कुमार उतावलो वली... २९
अबला बोलावी तिणवार, किणें दुःख रोवइ तूं नारि(र?),
तेह कारण मुझ आगलि कहो, तुझ दुःख भांजसि रोती रहो... ३०

१. अक्षत, चोखा २. अधर, ओठ ३. भीडववा ४. राजपुत्रपणुं

भणइ नारि तूं वा(बा)वन वीर, मुझ दुःख भांजसि साहस धीर,
सूली घालुं माहरो कंत, भूखो तरस्यो बहु हुवंत... ३१
मइं आण्यो छइं अे कंसार, हुं न सकुं देई आहार,
ऊंची सूली आवडुं नही, तिण कारणि दुखाणी सही... ३२
वीर भणि मुझ आवो खंध, दइ आहार चडी मुझ कंध,
कुमर जाण्यो सहु साचुं अेय, [१]लछनौं तउ नवि जाण्यो भेय... ३३
ते नारी तिण खांधइ करी, सूली आगलि ऊंची धरी,
ते सघलुं मांड्यो पाखण्ड, [२]मृत्यक करिवा लागी खण्ड... ३४
करइ आहार निं कलकलइ, जाणइ अे नर किमही छळइ,
कुमरे अेहवुं देखी जाम, पग साहीनइं नाखी ताम... ३५
छेद्यो नाक लेइनिं छुरी, सीखामणि इम दीधी खरी,
बुंब करंती नासी गइ, अेणी वार्ति ते निकटी[३] थई... ३६
अे छलतां हुं साम्ही छली, इसी बुध हिव न करुं वली,
घणा घसाव्या घाठी तेह, साहसीक नर साचुं अेह... ३७
मुजसिउं वयर कीयो इणि आज, हूं जइ अें छंडावुं राज,
कपट रच्युं कुमरसिउं घणुं, तेह वात सुणो हुं भणु... ३८
कीधुं तेणे कुमरनुं रूप, राउ न जाण्यो तेह सरूप,
इसूं कूड ते देवी करी, गइ अन्तेवरमांहि संचरी... ३९
पछिम राति जाग्यो भूप, दीठुं कुमरह तणो सरूप,
राणी सरसो रमतुं दीठ, राजा हीयडि कोप पईठ... ४०
ऊठ्यो कर लेइ करवाल, राय भणइं अे मारुं बाल,
पापी पाप न जाणइ वात, अेणि कीधो मोटो उतपात... ४१
कोप धरीनइं चलीयो जिसइ, कुमर रूप नासी गयो तिसइ,
नकटी देवीअे कीधुं सहू, राजा हियडइ कोप्युं बहू... ४२
कूड करीनइं नासी गई, रयणी गई प्रह वेला थई,
तउ राअें बोलायो प्रधान, मारि कुमर म धरिजे कान... ४३
तव बोलइ वलतुं मंत्रीस, असुं कोप कांइ करो जगीस,
सुगुण सरूप सुलखिण अेह, कुविसन नव सइ अेहनिं देह... ४४

१. लक्ष्यनो २. मृतक ३. नाक विनानी

राय भणइ तूं म करि वखाण, काढि काढि कइ चूकसि प्राण,
आप जंघ किम उघाडीअे, जेणी बार्तिं साम्हां लाजीअे... ४५

॥ वस्तु ॥

वयर पोखी वयर पोखी, गईय ते नारि,
तव कुंवर घरि आवीयो, अेह वात कांई न जाणइ,
परधाने बोलावीयो, तुझ उपरि राय कोप आणइ,
कुमर भणइ कारण किसुं, जे रूठो मुझ तात,
जउ जईअे तउ जीवीअे, नहीतरि होसी घात... ४६

॥ चउपई ॥

भणइ प्रधान कुमर सुणि वात, ताहरुं जस छइ देसविख्यात,
रायनों कोप हूवो सा भणी, तूं कीधो हूं तो राजनों धणी... ४७
कुमर भणइ नवि कीयो विणास, मइं न विलोप्यो किहनउ ग्रास,
को वयरी आवी नि मिल्युं, तिण वयणें राजा मन टल्युं... ४८

॥ गाथा ॥

तं नत्थि घरं तं नत्थि राउलं, देवलं पि तं नत्थि,
जत्थ अकारणकुविया, दोतिन्नि खला न दीसंति... ४९

॥ दोहा ॥

पधरडइ इम कंति कडी, परि छिदेडे अेय संति(?),
सर्पह दुर्जन दो समा, अेम विसास म करंति... ५०
दुर्जन पाहें अति भलो, काल डसइ इकवार,
दुर्जन पग नित डसइ, जोइय च्छोड अपार... ५१
इम जाणीनिं चालीयो, लीधो मोर सुचंग,
जंत्र प्रभावि ऊडीओ, अम्बरे गयो उतंग... ५२

॥ चउपई ॥

चाल्यो कुमर ते महाबलवंत, करि हथियार सार झलकंत,
महावनमांहि पुहुतो जिसइ, सिधपुरुष इक दीठो तिसइ... ५३
ते देखी कुमर ऊतरइ, विनय करी साम्हों संचरइ,
ततखिण कुमरि कीयो प्रणाम, आदर वयण बुलाव्यो ताम... ५४

साध भणिं नर सांभलि वात, पहिलुं तां मुझ सुणि अवदात,
मुझ गुरु विद्या दीधी सार, सोवन सिधरस होइ अपार... ५५
जो तूं उत्तरसाधक थाय, मुझ विद्या जिम सिद्ध ज थाय,
तउ तूं साहसीक नर सूर, तुझ दृष्टि [१]खुद्र जाअे दूर... ५६
तुझ सिर छइ लखिण बत्रीस, तूं दीसइ सव गुणनूं ईस,
कुमर मान्यों वयण प्रमाणि, तव विद्याथी करइ सुजाण... ५७
आण्यो रस ते गंध पसार, आणिं सोहागो सोमल खार,
आण्यो वननां ओषध घणा, नाम न जाणुं हूं तिह तणा... ५८
कीधी पूजा भयरव तणी, तेणें मांडी रसनी साधणी,
कुंवर उत्तरसाधक थयो, लेई खडग निं पासइ रह्यो... ५९
भूत प्रेत को छल नवि करई, कुमर तणी दृष्टिं सहु डरइ,
विद्या सिध थई अतिसार, सिधपुरुष हरख्यो तिण वार... ६०
सिध भणे तूं बावन वीर, परउपगारी साहस धीर,
लेंई सोंवन्न वेल तुं साथि, अरधी विहची आपुं [२]आथि... ६१
भणइ कुमर सोवन नही काज, सिधपुरुष मइ भेट्यो आज,
सारी विद्या देओ हित करी, हूउ आगलि होवइ खरी... ६२
तउ दीधी ओषधी सार, एकइ नवि लागइ हथियार,
जल बूडंतो तारइ अेक, दोय जडी आपी सुविवेक... ६३
[३]मोकलावी कुंवर संचरइ, हिईयामांहि आणंद अति धरइ,
मोर चडी मननइ उछाहि, ते वाय तणी परि चाल्यो जाय... ६४
दीठो नगर तिहां अति चंग, झलकइ गढ मढ पउलि उत्तंग,
आव्यो नगरी धरी उल्हास, [४]उवस नगर तिण देख्यो तास... ६५
कउत्तिग देखी चिंतइ असुं, मनुष्य नहीं अे कारण किसुं,
जोऊं रायभवन को अछइ, अे कारण जाणीसइ पछइ... ६६
आव्युं राजभवन संचरी, निरखे मंदिर दहदिस फिरी,
सप्त भोम घरि आव्यो जिसइ, च्यार कन्या तिण दीठी तिसइ... ६७
जाणों रूपिं रम्भा जिसी, सुर कन्या समवडि छइ तिसी,
गजसिंघ कुमर बुलावी तिहां, कुण कारणि पूछइ तुम्ह इहां... ६८

१. क्षुद्र तत्त्वो २. साधनसामग्री ३. रजा लई ४. उज्जड

नारि भणइ सुणि साहसधीर, इहां कां आव्यो बावनवीर,
जमनुं घर अे नगर सुजाण, नास नास कइ [१]चूकसि पराण... ६९
भणइ कुमर भय किहनो होय, राखस भूत प्रेत छइ कोय,
दिउ सीखामणि तेहनई आज, कहो वात छांडी तुम्ह लाज... ७०
भणइ नारि नर सांभलि बात, **नरसिंह** राय अम्हारुं तात,
आणंदपुर पाटणनो धणी, अम्हे च्यारि कुमरि तेह तणी... ७१
अेक दिवस ते नरसिंघ राय, [२]रामति [३]मिस रयवाडी जाय,
महावनमांहि पुहुतो जिसइ, तापस अेक दीठो तिणं तिसइ... ७२
ते देखी राजा इम भणइ, जमवा घर आवो आपणइं,
राजा तेडी आव्यो जाम, जमवा कारण बइठो ताम... ७३
इणि अवसर अम्हे बहिनर चार, आवी जोवाकारण बार,
देखी रूप तापस अम्ह तणुं, पापीइं पाप आण्यो मन घणुं... ७४
चल्युं मन नवि आणइ ठाय, ते देखीनइ मन कोप्यो राय,
अेणे तप नीगमीयुं सहू, पापी पाप धरइ मन बहू... ७५
धरी रीस जणनइ इम कहइ, राजमाहि रखे तापस रहइ,
काढउ नयर बाहिरे अेह, पापें भरीयो छइ अेहनुं देह... ७६
आगि वानरनइं बलि छल्यो, [४]जूवारीनइं जूवटइ मिल्यो,
दाहज्वरनइं दाधी देह, राउला जणनइं रूठा तेह... ७७
दूहव्यो तापस ते तिण वार, काढ्यो साही नयरह बार,
रोस आण्यो तिण मनमहि घणुं, हिव सुणों आचार तिह तणुं... ७८
पापी कुबुधि मनमाहें धरी, आवइ निसभरि तिह संचरी,
राजभुवण गढ पउलि पगार, ते ओलंगी आव्यो वार... ७९
अम्हे चारे बहनर घरमांहि, सूती मनह तणइ उच्छाहि,
इणि अवसरि जागीयो भूप, दीठो तापस तणो सरूप... ८०
उठो कर लीधा हथियार, ते तापसनुं कीध संहार,
हण्यो खडग अम्ह पासि जिसइ, तिण संचलि अम्हे जागी तिसइ... ८१

१. प्राण गुमावीश २. रमत ३. बहानाथी ४. जुगारी

ऊठी बाहर आवी जाम, तापस मार्यो दीठुं ताम,
धिग रूप अम्हारा सही, अम्ह कारण अे हत्या थई... ८२
तापस मरीनइं राखस थयुं, पूरव भवनों वयर गहिगह्युं,
आव्यो नगर धरीनइं रोस, नगरमांहि तिण पाड्यो सोस... ८३
लोक दहोदिस[१] नासी जाय, राखस आवी हणीयो राय,
अम्हे अेणें पापी [२]साही च्यार(रि), हिव करवा हींडइ छइ नारि... ८४
विवाह सजाइ लेवा गयो, इणि अवसरि तूं इहां आवीयो,
हिवइ अम्हनइं गति केहवी होय, अे संकट उतारइ कोय... ८५
कुमर भणइ मन नांणों खेद, बुध करीनइ रचसुं भेद,
बुधवंत नर जीपइ सही, तेणी वाति च्यारे गहगही... ८६
जेहमांहि बुध बल तेहनूं सही, बुध विना बल कांई नही,
ससलइ सीह [३]नपात्यो सही, **पंचाख्यान** बात अे कही... ८७
बुद्ध करी कुंवर इम कहइ, जेणी वेलां राखस घरि रही,
कूडी माया करिजो घणी, वात न कहिजो हीया तणी... ८८
न्हावा कारण बइसइ जिसइ, नयण बेहू खल भरजो तिसइं,
सांन करिजो मुहनइं तिसइ, आवी राखस बांधुं जिसइ... ८९
बुध करीनइं छानुं रह्यो, तेतलइ तापस तिहां आवीयो,
तउ तेणीइअे आदर कीधुं बहुं, बुध करीनइं जीपइ सहु... ९०
न्हावा तणी सजाई करी, कंकोडी [४]खल भाणइ भरी,
न्हावा कारण बइठुं तउ, आंखि भरी तेणी खलसुं बेउ... ९१
करी सांन कुंवर आवीयो, मोर बांध राषसनइं कीयो,
पाड्यो पग देइ बइठो पूठ, पहिलुं ताण्यो ते घण मूठ... ९२
राखस चिंतइ मनमहि इसुं, सही को भेख(द?) कारण किसुं,
परि करीजइ किमइ इह नही, कीया पाप ते लागा सही... ९३
मूकि मूकि तूं मोटो वीर मइं, तुझनइं दीधी धीर लेई,
वाच असुर छोडीयो, मूक्यो राखस वनमहि गयो... ९४

१. दशे दिशाओमां २. पकडी राखी ३. नाश कर्यो ४. भूको

नारी प्रति कुमर पभणेय, जिहां कहो तिहां मूकुं लेय,
स्त्री भणइ अम्ह सरसी(खी?) साथि, जनम जनम होजो तुम्ह संघाति... ९५
[१]वासो लोक करो पर काज, अम्ह बंधव बइसारो राज,
तेम सुणी कुमर इम भणइ, छइं बंधव केता तुम्ह तणइं... ९६
भणइ नारि अम्ह बंधव दोय, **देवरथ** नइं **दाणव** सोय,
लोक सहित ते नासी गया, **श्रीपुर** नगर जईनइं रह्या... ९७
सुणी वात तेडाव्या तेय, कुमर राज बइंसारया बेय,
वास्यो नगरलोक अति बहू, दिन दिन ओच्छव करइं ते सहू... ९८
गजसिंघकुमर ते परणी नारि अन्तेवरी थई ते च्यारि,
देवसुंदरि सुरसुंदरि जाम, **रयणसुंदरि रयणावती** ताम... ९९
च्यारि खण्ड बहु बुध करी, अेतलइ च्यारि नारि तिण वरी,
संघ तणी तां अनुमतिं लहुं, कथा खिणंतरि तउ किंप कहुं... १००

॥ इति श्रीगजसिंघकुमार-चरित्र प्रथमखण्ड समाप्त ॥ श्री १॥

॥ वस्तु ॥
कुमर चिंतइ कुमर चिंतइ मनह मझार,
इहां रहिवुं जुगतुं नही, सास्त्र बुध हियडइ आणीय,
नारि प्रतिं जंपइ इसूं तुम्हे, सुणो मुझ अेक वाणीय,
नर सासरि जे घणुं रहइ, निहचइ विणसइ सोय,
नीतशास्त्र जे बोलइ इसुं, इम जंपइ सहु कोय... १
॥ दोहा ॥
स्त्री पीहर विणसयही, नर सासुरइ जोय,
तप विणसय माया करी, [२]कुविसने छोरु सोय... २
इम जाणीनइं चालिवा, करइ सजाइ[३] वीर,
देवरथ मोकलावा गयो, तेह ज साहस धीर... ३
जाण्यों बहनेवी चालतुं, दीधा तेजी तुखार,
बहिनर संतोषी घणुं, आप्यो धन अतिसार... ४

१. लोकोने वसावो २. खराब व्यसन ३. तैयारी

॥ चउपई ॥

चाल्यो कुमर अति सुविचार, लीधा पांच तेजीय तुखार,
चारे नारी साथें लेय, महावन मांहि पुहुतुं तेय... ५
बार जोयणनी अटवी होय, तिहां मनुष्य न पइसइ कोय,
कुमर पुहुतो ते वन मांहि, चालइ मारगि दह दिस बाहि... ६
दिन आथमीयों रयणी थई, लीयो वीसामो वडथडि जई,
बांध्या घोडा तरुवर तलेय, सूती नारि निंद्र भरि तेय... ७
जाग्यो कुमर खडग करि धरी, अेणें अवसरि दोय विद्याधरी,
सारंगें चिंत धरइ मन माहि, झलकइ तेजे सूरज प्राहि... ८
दीठो कुमर वनमांहे जिसइ, विद्याधरी मन हरखी तिसइ,
असुं पुरुष जउ दीठो आज, तउ सीधा मनवंछित काज... ९

॥ वस्तु ॥

कुमर देखी कुमर देखी, वनह मझारि,
विद्याधरी इम चिंतवइ, भाग्यवंत नर अछइ कोई,
सुरपति नरपति जाणींअे, मनुष्य रूप अेहवा न होई,
हिव आपणि अपहरि लीजीयइ, कीजइ भोग विलास,
जीवतव्य फल अेह छइ, पूरीजइ मंन आस... १०

॥ दोहा ॥

ईम जांणी विद्याधरी, अघोर निद्रा तिण दीध,
कुमर निद्रावसि थयो, तउ ततखिण तिण लीध... ११
विमाने बइसारी चली, कुमर न जाणि भेउ,
गिर वइताढ सुहामणुं, हिवइ ते आव्या बेउ... १२
इणि अवसरि वन माहिली, जागी नारी च्यारि,
कंत न देखइं आपणुं, झूरइ मनह मझारि... १३

॥ ढाल ॥

बिरहनी नारी जागी इम भणइं अे, नही अम्ह दीसइ कंत तूं,
नाह तूं किहां गयो अे, मेलीय वनह मझारि तूं...१४ नाह तुं किहां-अे आंकणी.
अम्हे गाढी अभागणी अे, सुख नवि सरज्युं आज तूं,
के अम्हे करम बहु करया अे, के अम्हे दीधा आल तूं... १५. नाह तुं किहां.

के अम्हे तप करी खंडीया अे, फोडी सरवर पाल, तूं,
के अम्हे जीव विणासीया अे, मोडीय तरुवर डाल तूं... १६. नाह तुं किहां.
के अम्हे बाल विछोहीया अे, पामिय दु:ख अपार तूं,
वादली पूछुं वातडी अे, कहे कहां गयो अम्ह कंत तूं... १७. नाह तुं किहां.
वनदेवति तुम्ह वीनवुं, किण अपहरीयो अम्ह कंत तूं,
ईम विलवतां रातडी अे, वीतीय जसु प्रभाति तूं... १८ नाह तुं किहां.

॥ चउपइ ॥

प्रह विहसी उग्यो बली, थई नारि विरह आकुली,
नाह नाह करि दह दिस जोय, साद करी सर लई सर रोय(?)... १९
करम उदय सहि आव्या आज, जिम दवदंती थई नलराज,
आज अम्हारइ ते पर होय, करम आगलि नवि छूटइ कोय... २०
कीजइ सुध को वसती जई, साहसपणुं मन आण्यो सही,
तुरी लेईनइ चालइ नारि, पुहुती **दसरथ** नयर मझारि... २१
राज करइ तिहां पापी राय, लोपइ धरम करइ अन्याय,
न्याय रीति नवि जांणइ अे किसी, पापबुध तसु हीयडइ वसी... २२
लोकें दीध अन्याई नाम, पापीरंजण ते सव गाम,
दंडइ लोक करइ आबाध, पापी पालइ दूहवइ साध... २३
दीठी नारि अतिरूपिं सार, पापबुध मन धरइ गमार,
करुं अंतेउर अेहनइ आज, तउ जणनइ कहइ छांडी लाज... २४
च्यारे नारि अे तुम्ह अपहरो, अंतेउर माहि पुहुती करो,
रूपवंत नइं रूडी सही, असी नारि किहां दीसइ नही... २५
तउ ततखिण तिण साही नारि, लेई गया राजभुवन मझारि
हाहाकार नगर माहि थयुं, महाजननइं मन कोप ज भयुं... २६
हिव छांडीजइ अेहनो वास, दिन बिहु मांहि पडसे त्रास,
रावण राय लंकानों धणी, ते रामइ कीधो रेवणी... २७
गर्दभिल्ल उजेणी भूप, पापिं पडीयो नरगह कूप,
सरसती सती अेणइ अपहरी, घणो [१]विगूतो पापिं करी... २८

---

१. वगोवायो

हिव सही जास्ये अेहनों राज, दीजइ सीखामणि अेहनिं आज,
तव महाजन सव नगर ज तणो, राजभुवन चाल्यो अति घणो... २९
तेहमांहि धुरि जगसी जयवंत, भीमसेन अनिं श्रीवंत,
खेतो पूनो पातू पहिराज, मनजी मांडण नइं महिराज... ३०
जावड भावड भूचर भीम, राणो रणधो खेतो खीम,
पूनो पीथो नइं पदमसी, भोजो काजो नइं राजसी... ३१
वीरो धीरो नइं धरमसी, आसड पासड नइं करमसी,
धांधो धीधो नइं धनराज, मानों मांडण नइं सिवराज... ३२
चाल्यो महाजन धरीय विचार, जई अबलानी कीजइ सार,
राजभुवन जइ भेट्यो राय, स्वामी म करिअे वडो अन्याय... ३३
रवि ऊगें जउ होई अंधार, [१]ससिहर बरसइ जो अंगार,
जउ तूं चूकसि देव बिचार, तउ प्रजा तणी कुण करिसे सार... ३४
तूं सही मोटो नइं मोभीक, अेणी वातिं सही थासो फीक,
अबला छोडि कह्यो अम्ह मान, पछइ [२]उरतउ करसिं [३]निरवाणि...३५
तिण वातें ते कोप्यो राउ, सीख न मानी वाज्यो वाय (?),
जे महाजन बात जि कही, भर्या घडा ऊपरि वहि गई... ३६
तव ते महाजन पाछो वल्युं, हिव रायनइं बोलावुं टल्युं,
सीख न मानी अेणिं आपणी, सही राजा थास्ये रेवणी... ३७
हिव चिंतिं नारी मन माहि, सासनदेवति मन आराहि,
पुन्यप्रभावे परतखि हुई, मागि मागि वछ तूठी सही... ३८
नारि भणइं तूं तूंठी मात, कहु किंहा कंत अम्हारी बात,
देवी भणइ ते वृतांत, विद्याधरी हर्यो तुम्ह कंत... ३९
होस्ये भेट म करो उचाट, मास दीह तुम्ह जोज्यो वाट,
राजरिद्ध स्त्री लहस्ये धणी, करस्ये सार बहिली तुम्ह तणी... ४०
हरखी नारि भणइ सुणि माय, अेणें नयर अन्याई राय,
दुष्ट बुध अम्ह उपरि धरइ, पापी पाप भणी नवि डरइ... ४१

१. चंद्र २. ओरतो, पस्तावो ३. नक्की, खरेखर

सासनदेवत आपइ हार, अे पहिरजउ तुम्ह सिणगार,
जे नर कुदृष्टि करी जोइस्ये, ते निहचइ आंधो होइस्ये... ४२
हार देईनइं देवि पहूत, कुमरी मनिं आणंद बहूत,
हिईया मांहि आरति धरइ, धरमध्यान वसेषें करइ... ४३
राजा पापबुध बहु धरी, आव्यो ततखिण तिहां संचरी,
आगइ नयण न देखइ सही, विलखवदन थयो पाछउ थई... ४४

॥ दूहा ॥

श्रीगजसिंघकुमारनुं, सांभलो चरित विख्यात,
विद्याधरीअे अपहरुं, तेहनी ते सुणो वात... ४५
गिर वइताढे लेई गई, पुहुति निय घर मांहि,
अेक संपि बिन्हे थई, वात करइं उछाहि... ४६
कंत नहि घरि आपणो, गयो [१]वदेसें तेह,
तिहां लगि आपण अेहसुं, रंग करीस्यां बेहि... ४७
इम जाणी विद्याधरी, जगाव्यो कुमार,
हावभाव बहु प्रेमरस, करइं ते सार शृंगार... ४८

॥ चउपइ ॥

जाग्यो कुमर मन चिंतइ असुं, हुं इहां आव्यो ते कारण किसुं,
हुं वन मांहि हुंतो सही, मुझनइं इहां कुण आण्यो लई... ४९
आकारइ करि जाण्यो सहु, नारिचरित्र इणें मांड्या बहुं,
इम जाणीनइं मन आदर्यो, [२]सीलसनाह सबल तिण करयो...५०
सास्त्रवात तिण हियडइ धरी, रह्यो कुमर निहचल मन करी,
विद्याधरीयइ धर्यो मन नेह, मधुर वयण बोलाव्यो तेह... ५१
हावभाव नारी मन धरिं, अबला वेस नवरंगी करइं,
पहिरणि फाली वाली तणइ, रंग्यो वस्त्र ऊपरि ओढणइ... ५२
उरि कंचूवो कसण बहु कसइं, मयणराउ जाणो तिहां वसइ,
सोवन झाल फलकइ सार, उरि सोहइ अेकावलि हार... ५३
नलवट टीली छइ वाटली, पहिरइ सोवनमइ राखडी भली,
[३]वेणिदंड करइ वासगनाग, सइथो जिसो मयणनो माग... ५४

१. विदेश २. शीलरूपी बख्तर ३. चोटलो

बेहू बाहें सोहइ बहिरखा, झलकइ हीरा तिहां नवलखां,
करि चूडी झलकइ रूयडी, आंगुलीयइं झलकइ मुंद्रडी... ५५
कटमेखला पाअें नेउरी, जाणें हरिनंदन-अंतेवरी,
रूपि रम्भा समवडि होय, जे देखी रंजइ सुरलोय... ५६
चंद्रवयणी मृगनयणी जिसी, बेउ [१]भमहि [२]सींगणि होइ तिसी,
नासां सोहइ सुकचंचु समान, अधररंग प्रवालवान... ५७
दाडिमबीज सरीखा दंत, कमल सरीखा ते नेत्र ज हुंति,
स्तन उत्तंग अंगि पातली, चालें विविह विबुध परि वली... ५८
कृसोदरी जंघ सुविसाल, नवल वेस नवरंगी वाल,
पातली चामरिं करिं धरी, कुमरि बोलाव्यो विद्याधरी... ५९
चतुरपणइ चालइ चमकती, गयगमणी रमणी ते हुती,
मधुर वाणि मुखि भाखिं तेह, नयणबाणि मूकइ तव वेह... ६०
तव मुख बोलइ रंग रसाल, स्वामी आस पूरो सुविसाल,
तुम्हे विद्याधरी सहि तूठी अम्हे, विषयतणा सुख भोगवो तुम्हे... ६१
जीवतव्य फल अे संसार, लही अवसरि भोगवीअे नारि,
जोवनवय तुर्रैणापण सही, लाज म आणों अवसरि लही... ६२
कुमर न बोलइ वलितुं किसुं, मुनिव्रत आदरीयुं जिसुं,
संवर खेडो तिणें करि धरी, पंचइंद्री राख्या वसिं धरी... ६३

॥ दुहा ॥

हावभाव बहु प्रेमरस, करइं ते सार शृंगार,
वलतुं नर बोलइ नही, जाणों अछइ गमार... ६४
ते जाणी विद्याधरी, अंगे लागी बेउ,
लाजह लोपी मन तणी, मयण जगावेइ तेउ... ६५
पग तलासइ करि करी, बोलावइं मनरंग,
लाज म आण सनाहला, लेइ उरि हीइउछंग... ६६
विषयबुध अम्ह ऊपनी, संतापी निसदीस,
औषध करो सुजाण प्रिय, पूरो अम्ह जगीस... ६७

१. भ्रमर २. धनुष्य ३. तरुणपणुं

जलसुय तस सुय तास सुय, तस रिपु पीडइ देह[१],
क्रिपा करो म्हां उपरी, पीड नवारो अेह... ६८
मुंह मांगसि ते पूरसुं, देसां विद्यासार,
अम्हे बे नारी ताहरी, तूं नहचइ भरतार... ६९
अेम करंतां निस समइ, आवीयो नारीकंत,
[२]प्रछन गति बाहिर रही, प्रीछ्यो सयल वृतंत... ७०
सयल चरित्र देखी करी, विद्याधर पभणेइ,
जे नर नारी वीससें, तेहनूं घर विणसंत... ७१
इसी वात जाणी करी, चित्त चमक्या तेह,
साहसीक नर अे भलुं, सील न मूकइ जेह... ७२

॥ चउपई ॥

विद्याधर इम चिंतइ सही, जोवुं हजी प्रछनों रही,
अजीय वात वीचारये किसी, निरखइ नारीचरित्र मन हसी... ७३
विद्याधरी विविध परि घणी, कला प्रगट मांडइ आपणी,
इम करतां नवि दीठउ बंध, कोप चडिउ नारी कामंध... ७४
सुणिहो नर तूं अछइ अजाण, कह्यो करि अम्ह कइ चूकसि प्राण,
वडीवार अेम कहतां हुई, तउहे वलतूं बोलइ नही... ७५
ते निसुणी कुमर इम भणइ, पोतइ काम नहीं अम्ह तणइ,
वात कहुं तउ लाजूं सही, कह्या विना पण न सकुं रही... ७६
विद्याधरी कहइ अम्हे सुजाण, अणहूंतुं उपजावुं माण,
जे नर अन्न निरंतर जमिं, नारिरूप देखी ते भणइ... ७७
नही पुरुषारथ अेहनइं सही, अेह वात पण साची कही,
रूपइ रूयडो मयण सरीस, अेह वात जाणइ जगदीस... ७८
च्यारि पुहुर अम्ह अंगे करी, दीधा आलिंगन आघो धरी,
हाव भाव बहु कीधा पछइ, जाणो पाहण अे नर अछइ... ७९
इम करतां नवि लागो मरम, स्त्री रूठी जव भागो भरम,
तव नारी बुंवारव कीयो, चोर चोर कहि बोलावीयो... ८०

१. आनो अर्थ अस्पष्ट रहे छे. २. छूपी रीते

धाया लोक न लागी वार, आव्यो ततखिण नगरतलार[१],
वाज्या काहली वाज्या तूर, मिलिया लोक विगोवा पूर... ८१
घर वीट्यो आवी तिह तणुं, मारि मारि मुख बोलइ घणुं,
तं निसुणी विद्याधर इम भणइ, घाउ म देज्यो सिर अेह तणइं... ८२
मंइं प्रीछ्यो छइ सयल सरूप, नही चोर अेह मोटो भूप,
अे नर साहसवंत सुजाण, अे निरमल जाणे जगि भाण... ८३
नारिचरित्र निहचइ सही, मइं जोवुं सब बनांइ रही,
सास्त्रमांहि जे वात ज कही, ते तो कांई खोटी नही... ८४

॥ दूहा ॥

अंबर [२]विथरय स्त्रिचरिय, कोय न जाणइ भेय,
साहसीक नर ते भलुं, सील न चूकइ जेह... ८५
पाय प्रणमी कुमरह तणों, बोलइ बे कर जोडि,
सो न इसा मन लागही, सा पुरिस न लागइ खोडि... ८६

॥ चउपई ॥

तिण गिर राजा अति बलवंत, नामसु विद्याधर श्रीवंत,
तेणइं मोकलीया जण आपणा, तेडाव्या ते बिन्हें जणा... ८७
विद्याधर गजसिंघ कुमार, आवी रायनइं कीध जुहार,
आसण बइसण दीधां मान, आदर सहित दिवार्या पान... ८८
क्रम उदय अे आव्युं सही, वात कहिवा तउ जुगती नही,
देखी रूप लावन तेह तणो, **श्रीधर** राजा हरख्यो घणुं... ८९
नेहभर थयुं वलतुं अेम भणइ, पुत्री दोइ अछइ अम्ह तणइं,
ते तुम्ह परणों करीय पसाय, असूं वचन कहइ श्रीधर राय... ९०
कुमर भणइ सांभलो नरेस, नाम ठाम नवि जाणो नवेस,
कुल सरूप अजाण्या पखइ, परणइ परणावइ ते झखइ... ९१
राय भणइ तूं अति सुजाण, आभइ छायो किम रहइ भाण,
रूप लखण गुण त(ते)जइ करी, मइं जाणी सव ताहरी चरी... ९२

१. नगररक्षक, कोटवाल २. विस्तार

भलो लग्न गोधूम कंसार, नरनारी मन हरख अपार,
राजलोक मन हरख्यो बहू, घरि घरि उछव करई बहू... ९३

॥ ढाल - विवाहलानी ॥

दोय कन्या सिणगारीयो अे, विवाह उछव कारीयो अे,
गीत धवल गाअे अति घणा अे, तिहां ठाट मिला सजन तणा अे... ९४
नारीअे रूपिं रूवडी अे, करि खलकइ कंचन चूडली अे,
संवर मण्डप रूवुडो अे, वरवारुय बेसइ लहुयडो अे... ९५
लग्न समिं जब आवीयो अे, विप्र समय वरतावीयो अे,
हथलेवो मेली करी अे, **गजसिंघ** नारी दोय वरी अे... ९६
मनरंगि सहु इम भणइ अे, सुख संपत्ति होज्यो इह तणइ अे,
पूरव भव तप बहु करया अे, कइ न्याय निहचल मन धरी अे... ९७
भाव करी जिन पूजीया अे, मनसुध जिन धरम कहीयो अे,
जीवदया पाली खरी अे, जिनवाणीय निहचल मन धरी अे... ९८
वर लाधो सुंनम(?) करीए, कवि **नेम** कहई आणंद धरी अे...९९ (?)

॥ वस्तु ॥

मनहरंगि मनहरंगि हूवो विवाह,
सयल जन संतोषीया, नयर लोक सहु इम बोलइ,
कन्या वर लाधो भलुं, नहीय रूप कोय अेह तोलइ,
पूरव भव पुन्यें करी, पाम्या सुख संसार,
बेहु खण्ड पूरा हूवा, ते परणी तिण नारि... ९९
च्यारि खण्ड बुधि बहु कही, अेतलइ दो खंड पूरा थइ,
संघ तणी जउ अनुमति लहइ, कथा खिणंतर तउ कवि कहइ... १००

॥ इति श्रीगजसिंघचरित्र द्वितीयखण्ड सम्पूर्ण ॥

(क्रमशः)

* * *

A/15, अमीझरा एपा.
शान्तिवन, पालडी, अहमदाबाद

महोपाध्याय-श्रीयशोविजयगणि-शिष्य श्रीतत्त्वविजयगणिरचित पांच लघुकृतिओ

– सं. मुनि त्रैलोक्यमण्डनविजय

उपाध्यायजीना उपासकोने मन उपाध्यायजी विशे कंइक नवुं जडी आवे अेटले ओच्छव-महोच्छव थई जाय, अने अेमांय अेमना शिष्यरत्ने रचेली पांच-पांच कृतिओनी (अे पण पाछी अजाणी ने अप्रगट!) कर्ताना स्वहस्ते लखायेली प्रत मळी आवे तो तो जाणे गोळनुं गाडुं मळ्युं ! अत्रे आ आनन्दने वहेंचवानो ज उपक्रम छे.

मूळे आ प्रत (सचित्र) कोईक ज्ञानभण्डारना (घणेभागे ला.द.ना) हस्तप्रतसङ्ग्रहमां सचवाई हशे. पण तेनी Xerox परमपूज्य विद्वद्वर्य मुनिराज श्रीधुरन्धरविजयजी पासे सङ्गृहीत हती. तेओअे हमणां ते Xerox मित्रताना नाते पूज्य गुरुभगवन्तने पाठवी. अने साहेबजीअे तेनी नकल करवानी मने आज्ञा करी.

उपाध्यायजीना शिष्यो माटे मनमां कायम अेक जातनुं आकर्षण रहे छे. उपाध्यायजीना ग्रन्थोमां डगले ने पगले जोवा मळती साधुतानी व्याख्या अने श्रामण्यनी विभावना जोतां अे स्पष्ट छे के अेमना शिष्य थवा माटे पण बहु आकरी तावणीमां तपवानुं थतुं हशे. काचापोचानुं तो अे काम ज नहीं होय. उपाध्यायजी शिष्य तरीके स्वीकारे अने तेमनां चरणोनुं सांनिध्य मळे अे जीव ज केटलो बडभागी गणाय! अने अेवा जूज बडभागीओमां तत्त्वविजयजी मुख्य छे.

तत्त्वविजयजीने कवित्वशक्ति लोहीमां ऊतरी हशे. काव्यकला अे गुरुपरम्परामां ज वहेती हशे. पण्डित नयविजयजी अेमना दादागुरु. अे पण कवि जीव. गुरुमहाराज उपाध्याय भगवन्त तो मध्यकालीन काव्यसाहित्यक्षेत्रे मातबर प्रदान करनारा महापुरुष. अने तत्त्वविजयजीअे पण अे वारसो साचव्यो. अमरदत्त-मित्राणन्दरास, चतुर्विंशति-जिनभास व. तेमनी कृतिओ प्रसिद्ध छे. अनुसन्धाननां पाने पण तेमनी कृतिओ प्रकाशित थई छे.

प्रस्तुत कृतिओमां पहेली छे नेमनाथ बारमासा. नेमनाथना विरहमां टळवळती राजीमतीनी आन्तरव्यथा, बारमहिनाना अलग अलग कार्यसन्दर्भे वेठवी पडती एकलताना माध्यमथी अत्रे व्यक्त थई छे. जोडली तूटी गया पछीनुं एकलवायुं जीवन केटलुं दोह्यलुं होय छे तेनुं बयान आपणने बेचेन बनावी मूके तेवां संवेदन जन्मावे छे. बीजुं नेमनाथ स्तवन पण राजीमतीनी विरहवेदनानुं ज करुणगीत छे.

अन्त्य त्रण रचनाओ तपगच्छपति विजयप्रभसूरिनी स्तुतिपरक छे. तेओ ओसवाळ वंशना शाह शिवगण अने भाणीना 'वीर' नामना पुत्र हता तेमज विजय-देवसूरिजीना पट्टधर हता अे सिवायनी कोई ऐतिहासिक हकीकतो आमां नोंधाई नथी. पण तेमनो गुणवैभव, तेमणे मेळवेली लोकचाहना अने कर्तानो तेमना प्रत्येनो अहोभाव आमां अवश्य माणी शकाय छे. त्रण विभिन्न देशीओमां थयेली आ रचनाओ गेयता अने सरस कथनरीतिने लीधे मधुर बनी छे.

नेमनाथस्तवन (क्र. २) सं. १७१३मां महेसाणामां चोमासा दरम्यान रचायुं छे. अन्य रचनाओमां रचनावर्षनो उल्लेख नथी, परन्तु श्रीयशोविजयजीनो 'उपाध्याय' के 'वाचक' तरीके उल्लेख न होवाथी तेमना उपाध्यायपदवीना वर्ष सं. १७१८ पूर्वेनी ते रचनाओ होई शके.

*

१. नेमनाथबारमासा

॥ तातवचन श्रवण सुणी - ए देशी ॥

सारद पदपङ्कज नमी, मनि धरी आणंद ।
सदगुरु केरइ सांनिधिं, थुणसुं **नेम** जिणंद ॥१॥
रहो रहो नेमजी वालहा...
रंगिं **राजीमती** कहइ, सुणो जीवनप्राण! ।
आस निरास न कीजिइ, तुम्हे चतुर सुजाण ॥२॥
सखि! **आसाढ** मेह धडूकिओ, झबकइ अति बीज ।
बापिअडउ पिउ पिउ करइ, सुणतां होइ खीज ॥३॥
श्रावण मास ज आविओ, नाविओ पिउ गुणवंत ।
कंत विना कहो गोरडी, किम काल गमंत ॥४॥
भाद्रव मासनी रातडी, वाल्हो नहीं मुझ पासि ।
ए सेज ए चित्रशालडी, न गमइ ए आवास ॥५॥
नवराति **आसोइं** सही, ख्याली लोक रमंत ।
घणुं रे घणुं वाल्हा! वीनवूं, प्रीतम! आवो अेकांत ॥६॥
सखि! **कार्तिक** मासि दीवालडी, सहू करइ पकवान ।
नवल नेह पल्लव करइ, मुझ दुख असमान ॥७॥

मागसिरमां टाढि अतिघणी, वाइ मुझ देह ।
इणि रति मुझसुं छल करी, निठुरइं दीधो छेह ॥८॥
पोसइं ते पूरव प्रीतडी, सांभरइ सुजान ।
पिउविरहो मुझ दुख दहइ, तूं तो वडो रे अजाण ॥९॥
माहमां मोटी यामिनी, नावइ नींद लगार ।
वासर अन्ननी रुचि नहीं, तुझ विण भरतार! ॥१०॥
तेल-फूलेल-गुलालसुं, रसिआ **फाग** रमंत ।
तुम्ह विण कुण साथिं रमुं, निसदिन झूरंत ॥११॥
सखी! चतुर **चैत्र** महीणडइ, चांपां बहु फूल ।
अंगिं सोल शृंगार ए, थाइ प्रतिकूल ॥१२॥
सहकारशाख **वैशाख**मइं, आवइ महाराज! ।
तुं तो पिउडा! घरि नहीं, आणी कुण दिइ आज ॥१३॥
जेठमासिं तावड तपइ, लू अति घणी वाय ।
अंबर नि चंदन घणां, डीलिं अड्यां न सुहाय ॥१४॥
ए बारमासे करी वीनती, तोहि न वल्या **नेम** ।
राजुल तब **ऊजलगिरिं**, पुहती ऊन्नालिं खेम ॥१५॥
इम मन वाली आपणुं, दिख्या लेइ प्रभु पासि ।
पिउ पहिली सिवपुर गई, पूगी पूरण आस ॥१६॥
पंडित श्री**नयविजय** सुंदरु, बुध **जसविजय** सीस ।
सीस **तत्त्व** भलइं भावसुं, प्रणमइ निसदीस ॥१७॥

रहो रहो नेमजी वालहा...

॥ इति श्रीनेमनाथ द्वादशमास संपूर्ण । श्रेयोऽस्तु ॥

*

२. नेमनाथस्तवन

सदगुरुना प्रणमी पाय, थुणसुं श्री**यदुपतिराय,**
ऊलट अधिके रदओ थाय रे ॥१॥ सामलिआ ।
कर जोडी **राजुल** बोलइ, अष्टभवनी प्रीति ज खोलइ,
नवमइ भवि कां डमडोलइ रे ॥२॥

पूरवली प्रीति संभारो, तुम्ह दरिसण लागइ प्यारो,
किम राखो नेह उधारो रे ॥३॥
कंत अजाण होइ तेहनिं कहीइ, नेह कीजइ तो निरवहीइ,
डूंगरडइ एकलडा न रहीइ रे ॥४॥
आवी पावस रति सुखकारा, दीसइ छइ अति मनोहारा,
बापइओ करत पुकार रे ॥५॥
पंथी सबही घरि आवइ, कंदर्प ते अधिक जगावइ,
एक निठुर नेम न आवइ रे ॥६॥
सखि! **श्रावण** मास ते आयो, अंगिं मुझ मदन जगायो,
विरहीनिं अति दुखदायो रे ॥७॥
झिरमिर वरसइ छइ मेह, तापइ मुझ दाझइ देह,
एणी रति सालइ सनेह रे ॥८॥
भाद्रवडइ भोग न छोरो, अबलासुं कां मन चोरो,
तुम्ह साथि किस्यो चालइ जोरो रे ॥९॥
तुझ विण निशि नीद न आवइ, मुझ अन्नपाणी नवि भावइ,
दोहिला तुझ विण दिन जावइ रे ॥१०॥
आव्यो ते **आसो**मास, आवो एणइ आवास,
पूरो ते मुझ मनि आस रे ॥११॥
कार्तिकडइ अतिदुख दीधुं, कामणगारइ कामण कीधुं,
माहरुं चित्तडुं चोरी लीधुं रे ॥१२॥
प्रेमइं पूरी बोलइ नारी, योवन कां जाओ हारी,
जूओ हियडइ कांत विचारी रे ॥१३॥
सखि! जाइ मनावो एकांत, वेगिं तेडी आवो कंत,
जिम विरहनो थाइ अंत रे ॥१४॥
कुण आगलि दुख कहीजइ, योवननो लाहो लीजइ,
जिम दुख सघलां ते छीजइ रे ॥१५॥
आहवी रूडी ए चित्रशाली, नेहइं निजरि जूओ नीहाली,
एहवी सेज _ [म?] मूंकओ सुंहाली रे ॥१६॥

एहवां राजुल वचन बोलंती, पिउनुं ते ध्यान धरंती,
गिरनारि चढी विलवंती रे ॥१७॥
सामी मुझ सुणि एक वात, एसी छइ तुम्हारी धात,
मानि वचन शिवादेवीजात ॥१८॥
नेम हाथि संयम लेई, अविहड तब प्रीति करेई,
शिवपुर पिउ पहिली पुहचेई रे ॥१९॥
नेम थुणिओ मनि उल्लास, **महीसाणे** रहीअ चउमास,
पूगी छइ मुझ मनि आस रे ॥२०॥
संवत **सत्तरतेर** (१७१३) वरसिं, कार्तिक शुदि पंचमी दिवसिं,
ए तवन करिउं मनहरखिं रे ॥२१॥
पंडित श्री**नयविजय** ईस, श्री**जसविजय** तेहनो सीस,
सीस **तत्त्व** दिइ आसीस रे ॥२२॥ सामलिआ ॥

॥ इति श्रीनेमनाथस्तवनं संपूर्णम् ॥

शुभं भवतु ॥ कल्याणमस्तु ॥ श्रेयः ॥

*

३. विजयप्रभसूरिभास

समरी श्रुतदेवी माय, वली लही सदगुरु सुपसाय,
गुण गाउं तपगछराय ॥१॥
सूरीसर! तुम्हसुं अविहड नेह,
जिम चातकनइं चित्त मेह...
श्री**विजयप्रभ**सूरिंद, पाय प्रणमइ नरवरइंद,
मुख सोहइ जिस्यो अरविंद ॥२॥
श्री**विजयदेव**-पटोधारी, तुम्ह मूरति मोहनगारी,
निरखइ टोलइ मली नरनारी ॥३॥
मुखमटकइ मनडुं मोहइ, तुझ रूप अनोपम सोहइ,
दूजो जोडि न आवइ कोइ ॥४॥

तुम्ह सरस सकोमल वाणी, जाणे मधुरी अमिय समाणी,
सहू जननिं चित्त सुहाणी ॥५॥
तपगच्छइ उदयो भान, दरिसनथी नवइ निधान,
जिम सासननो सुलतान ॥६॥
साह सिवगण कुलि अवतंस, मात **भाणी** उरवरि हंस,
दीपाव्यो जेणिं **ओसवंस** ॥७॥
कलिकालिं गौतम सरिखो, साचो सीलिं थूलिभद्र निरखो,
एहवो गुरु मइं पुण्यइं परख्यो ॥८॥
विबुध श्री**नयविजय** राय, श्री**जसविजय** सुगुरुपसाय,
सीस **तत्त्वविजय** गुण गाय ॥९॥ सूरी० ॥

॥ इति श्रीविजयप्रभसूरिभास संपूर्ण ॥

*

४. विजयप्रभसूरिस्वाध्याय

शुभ सरस वाणी दिओ माय जी, गुरुमुख मरकलडइ ।
कर जोडी प्रणमुं पाय जी, लोचन लटकलडइ ।
हेजइं थुणसुं **तपगछ**राय जी गु०,
श्री**विजयप्रभ**सूरिराय जी लो० ॥१॥
विजयदेव-पटोधर राजइ जी, तपगछ ठकुराई छाजइ जी ।
तुम्ह दूर किओ सवि फंद जी, मुख मोहनवल्लि कंद जी ॥२॥
ससिवयणी मलपती आवइ जी, थाल भरी भरी मोती वधावइ जी ।
वली याचकजन गुण बोलइ जी, कुण आवइ ए गुरु तोलइ जी ॥३॥
सहू वंछइ तुम्ह दीदार जी, जिम पिकनिं मनि सहकार जी ।
तुम्ह विरहो अम्ह न खमाय जी, घडी एक मास सम थाय जी ॥४॥
गेलइं गजगति चालि सुहावइ जी, मलपंता पाटीइ आवइ जी ।
मीठी अमृतमइ तुझ वाणी जी, पडिबोहइ तूं भवि प्राणी जी ॥५॥
सिवगणकुलि उदयो दिणंदा जी, मात **भाणी** केरो नंदा जी ।
जिनसासन सोभाकारी जी, जेणइं कीरतिवेलि विस्तारी जी ॥६॥

बुध **नयविजय** गुरु राजइ जी, सीस **श्रीजसविजय** गाजइ जी ।
सीस **तत्त्व** जंपइ धरी नेह जी, ध्याओ गिरुओ गुरु एह जी ॥७॥

*

५. विजयप्रभसूरिभास

कास्मीरी[१] मनमां धरी, अति ऊलटी हे वाणी दिओ सार कि ।
थुणसुं श्रीतपगछधणी, मुझ हियडइ हे अति हर्ष अपार कि ॥१॥
मजरो हमारो मानयो, गुणवंता हे श्री**विजयप्रभ**सूरि कि ।
मुख दीठइ हे दुख नासइ दूरि कि...
श्री**विजयदेव**सूरीसनिं, पाटि प्रगट्यो हे अभिनवो दिणंद कि ।
गुरुदरिसन सहु वांछतां, प्रह ऊठी हे नमइ सुरनरवृंद कि ॥२॥
गुरुमुख पूनिमचंदलो, देखी हरखइ हे भविकचकोर कि ।
जेहनिं जेहसुं प्रीतडी, मेह देखी हे हरखइ जिम मोर कि ॥३॥
चंदमुखी सरिखी भली, मृगनयणी हे मननइं उल्लास कि ।
सोल शिणगार सजी करी, टोलइ टोलइ हे गाइ गुरुगुणभास कि ॥४॥
सिवगणसा सुत सुंदरु, मात **भाणी** हे सिलइं सिरदार कि ।
वीरकुंमर जेणइ जनमिआ, सुखकारी हे **तपगछ** जयकार कि ॥५॥
सोहम-जंबू सारिखो, गुरु पाम्यो हे मइं पुण्यपसाय कि ।
नित नित ऊठी जेहना, पाय नमतां हे आणंद थाय कि ॥६॥
पंडितमांहि पुरंदरु, श्री**नयविजय** हे गुरुजी सुखकार कि ।
सीस श्री**जस** चूडामणी, तस सेवक हे **तत्त्वविजय** जयकार कि ॥७॥

॥ इति श्रीविजयप्रभसूरिभास संपूर्ण ॥

॥ दूहा ॥

चूकइ सहट किस्या ते साजन, सज्जन ते जे सहट मलइ ।
ते सज्जनसुं किम मानइ, कह्या पछी कथन गलइ ॥

*गणिश्री**तत्त्वविजय**लिपीकृतमस्ति श्राविका**हीरबाइ**पठनार्थम् ॥*
शुभं भवतु ॥ शुभवासरे ॥

* * *

१. सरस्वती ।

बाई मदैकवरनी बार व्रतनी टीप

– सं. मुनि धर्मकीर्तिविजयजी गणि

सं. १८८४ नी सालमां पं. धनविजयजी, माणेकविजयजी पासे बाइ मदैकवर नामना श्राविकाए सम्यक्त्व सहित बार व्रत ग्रहण करेलां. ते बार व्रतनी नोंध धरावता हस्तलिखित ओळियाना आधारे प्रस्तुत सम्पादन थयुं छे. नोंधमां ते ते व्रतनी अन्तर्गत उपयोगी अनेक वातो प्राप्त थाय छे. अनुसन्धानमां आ पूर्वे घणी गद्यात्मक-पद्यात्मक प्राकृत-गुर्जर बार व्रतनी नोंध प्रकाशित थयेली छे. ते श्रेणिमां ज आ अेक टीपनो उमेरो थाय छे. १९मी सदीनी आ टीप धार्मिक, भाषाकीय, सांस्कृतिक जेवी अनेक दृष्टिअे अध्ययन-योग्य जणाय छे.

*

॥ ॐ ॥

अथ बारे व्रतनी टीप कंचित् लिख्यते ।

अथ **समकीत**नो वीचार - देव श्रीवीतराग अढारे दोष रहित, चउत्रीस अतीसय, पांत्री वांणी गुणें करि सहित. तेना च्यारे न(नि)खेवा साचा करी सदहूं. गुरु सुसाधु मुनीराज पांच माहाव्रतना पालणहार, सतावीस गुणें करि सहित, द्रव्य-खेत्र-काल-भावें करि संयमना खप करता ते गुरु कही सदहूं. धरम श्रीकेवलीनो परुप्यो. सरव जीवने सुखदाई. दयामुल, आज्ञामुल साचो करी सदहूं. ए त्रण तत्त्व साचां सदहूं.

द्रव्यलिंगी यथासगते मोक्षमारगना दाता जाणी नमुं-नमावुं. कुदेव-कुगुरु-कुधरम परिहरु-परिहरावूं. हरी-हर-भ्रमा-विष्णवादिक देव तरण-तारण जाणी न नमुं-नमावूं. दाक्षणे लोकीक कारणे परनी अनुजाईइं परवसे कतोहलादिक कारणे जेणा. गोतरदीवी, भेरव, खेत्रपालादिक देवता इहलोक अरथें तथा धरम सहाय्य अरथें मांनवा-पुजवांनी जेणा.

दिन प्रतें सती जोगवाईइं सती सगतें देवदरसण करवूं. मारगें चालतां तथाकारणें जेणा, परवसे जेणा. मास प्रतें दिन ५ गुरु वांदवा. कारणें परवसें जोगवाई न बनें तो जेणा. दिन प्रतें नोकरवाली १ नोकारनी गणुं. न गणाइं

तो मास प्रतें ३० पुरी करुं. कारणे जेणा. दिन प्रतें पचखांण २ करुं. प्रभाते नोकारसी, सांजें दूवीहार, तिविहार, चोविहार. रोगादिक कारणे, परवसें, मारगे चालतां जेणा. मास प्रतें दिन ४ राते मोकला.

वरस प्रतें देवकें रुपैयो ०१, ज्ञान सारुं रु० ०१, गुरुपूजणे रु० ०१, साधारण सारु रु० ०१, जीवदयामां रु० ०१.

वरस प्रतें देवपूजा अष्टप्रकारी १ करुं. स्नात्रपूजा करुं. तथा देहरे अंगलुंणुं-२, वालाकुंची, वाती, अक्षत, फूल, फल, नीवेद, दीवेल सहित रोकरो रु० ०१ आपवां.

ए रीतें समकीत पालूं, छ छींडी च्यार आगार सहित.

प्रथम **थूल परणातीपात विरमण** व्रतें - तरस जीव नीरपराध निरपेक्ष संकल्पीनें हणुं नही, हणावूं नही. आरंभें घरकारजें जेणा. वालो करमीयां सरमीयां देहादीके उपजे तेंनी जेणा. रोगादीक कारणे जोकादीक* मुंकाववानी जेणा. परनें अनुकंपाइं जेणा. अलगण पांणीइं वसतर धोवा-धोवरावानी जेणा. अलगण पांणी पीवूं निषेध.

बीजें **थूल मरषावाद विरमण** व्रतें - पांच मोटकां जुठां न बोलु. कन्यालीक ते कन्या-वरनूं सरूप करूप, चतूर मूरख, नानी मोटी इत्यादिक परनुं न केहवूं. पोतानां घरनी तथा संबंधीनी जेणा. गोवालीक ते गाय भेंस बकरी ऊंटडीनी जुठु न बोलवूं. भोमालीक ते भोमी जमीननूं जुठु न बोलवूं. थापणमोसो ते कांई आपणी पासे वस्त अनांमत मुकी गयो होइं पाछो लेवा आवें तारे नामुकरय जावूं ते न करुं. कूडी साख राजदरबारे न भरु. देवगुरुधर्म कामे बोलवूं पडे तो जेणा. ए पांच मोटका जुंठ न बोलुं. बीजु व्यापार अरथें, घर अरथें, संसार अरथे जुठुं बोलाय तेनी जेणा.

तीजें **थूल अदत्तादान विरमण** व्रते - खातर पाडी, वाट पाडी, ताला खोली, गांठ खोली चोरी न करुं. जेहथी राजा डंडें, लोक भंडे एहवी मोटकी चोरी न करुं. सुक्ष्म घरचोरी तथा व्यापार अरथें जेणा. दांणचोरी रु० ५००नी जेणा. पडि वस्त लाधें तो धणी थाय तेने आपूं. धणी न थाय

* जळो

तो धरम थांनके वावरुं. निधानादिक लाधें तो अरधु धरमथांनके वावरुं, अरधुंनी जेणा.

चोथें **थूल मैथुन विरमण** व्रतें - चोथें स्वदारसंतोष परपुरुष-विरमणव्रतनें विषें कायाई करी सील पालुं. मन-वचन-सुपननी जयणा. आदेश-निर्देशनी जयणा.

इच्छापरिमाण व्रतें - इच्छा परिमांणें धन रुपीया रोकड ५०००. धान सरव जातनुं थईनें मण १५० खेत्र खेडववा नीषेध. वास्तु घर हवेली खडकीबंध ४ पोता निमित्ते करावववी मुकवी. देस-परदेसे भाडें घरेणें राखवा-आपवानी जयणा. हाट मालबंध-४, बखरा-३, नोहरा-४. रूपो तोला-५०००, सुवरण रूपया-तोला-१०००, हीरा जवर चूनी नंग नगीनो मोती मुगीया प्रमुख रूपीया १०,००० मोकला. कांसी पीतल तांबो लोह जसदप्रमुख सात धात थईनें मण-५०. दासी वेला सहित-२, दास-२, गाय-४ वेला सहित, बकरी-२ वेला०, भेस-२ वेला सहित, घोडा-४, घोडी-४, ऊंट-५, ऊंटडी-५ वेला सहित, बैल-४, सुखासन-१, पालखी-१, खासो-२, मेनो-१ इत्यादिक वाहन संयुता मोकला. उपरांत निषेध. घरवखरी सरव रूपीया हजार-१०,०००नी मोकली.

छठै **दिगविरमण** व्रतें - जेणें वास वसीइं तेणें वासथी च्यार दिसिइं कोस १००० तथा उरधदिसीं कोस-९, अधोदिसें कोस-९, धरमकाम तथा देवजात्री निमित्तें जयणा. जलवटें तो कारणविसेषें जयणा.

सातमै **भोगोपभोग** व्रतें - वरस एक प्रतें कपडो पोसाख-१० मोकली. पहिरावणी प्रमुख लैहणैं आवी ते राखवी-वावरवी मोकली. थिरमा, दुसाला प्रमुख घरें भेटी बरारै चाहीजै मोकला, हरवानी जयणा. गहणी पोताना राख्या छै ते वेहरवी वावरवा मोकला. काज अवसरै मांग्या पहिरवानी जयणा. शय्या, मांचो, बिछाणा प्रमुख पोताना घरनां तथा सगासंबंधीना मोकला. काज अवसरै परघरे जावो पडै तेहनां वावरवानी जयणा. वरस एक प्रतें सुवावड ४ करवी मोकली. दिन प्रतें अंघोल ३ मोकली. कारणविशेषनी जयणा. परनै आदेस-निरदेस देवानी जयणा. चूयो, चंदण, अरगजो, कस्तुरी, धूपेल, मोगरेल, चंवेल, लाखेल, कुंकू, हिगलू प्रमुख पोतानें अरथें वरस १ प्रतें सेर ५ मोकली.

वरस प्रतें कांकसी १५ माथा गुथवानी. दिन प्रतें पीसवुं मण, दलवुं मण-१, दलाववुं मण-४, खांडवूं मण-१, खंडाववूं मण-१०, सेकाववूं सेर-१०. माटी मुरड पाषण प्रमुख हाथ सूंषणी लाववा निषेध. घर अर(आ)रंभे मोल मंगावानी जयणा. घरटी-६, उखल-६, मूसल-२, छुरी-५, कतरणी-५, खुरसणा प्रमुख घर अरथें मोकला. वरस प्रतें रंगावा रेजा कीसी रंग तरेजा. (?)

पनरै करमादांननी विगत -

अंगालकर्म अंगारा, लीहाला, नीभाडा, ईटवा, चूनानी भठी, केलूनी भठी प्रमुख करवा-करावावा निषेध. घर अरथें मोल लेवानी जयणा. वान, वाडी, बाग, बगीचा, अरण्य, अटवी पोतानें अरथें आजीवका हेतु वै मोल लेवा-लेवरावावा निषेध. गाडा, वहिल, दुपद, हल प्रमुख मोल लेईनै साटा करी-करावी नफो खावो निषेध. गाडा, वहिल, ऊंट, पोठीया प्रमुख मोल लेइ भाडै आपवा निषेध. कुवा, तलाव, माटीनी खांण, पाषाणनी खांण, आजीविका हेतुं वें फोडवा-फोडाववा निषेध.

दव दांत, नख, चरमचीप, कचकडौ प्रमुख वेचवो-वेचाववो निषेध. घर अरथें जोइयै तेहनी जयणा. लाख, मनसिल, हरिआल, गुली, धावडी, टंकणखार प्रमुख वोहरी वेचवा-वेचावा निषेध. घृत मण १० घरखरचें नें घृत मण १० व्यापार अरथें. तेल मण ५ घरखरच नें तेल मण १ व्यापारनें अरथें. गुल मण १० घरखरचन नें गुल मण १० व्यापार अरथें. खांड मण १० घरखरचणनें अरथें खांड मण १ व्यापारनें अरथें. मिसरी मण ५ घरखरच ने मिसरी मण १ व्यापार निमित्ते जणा. बीजा पण रस घरखरचनें अरथें चाहीजै तेहनी जयणा. मांस मदिरा मांखण सेत व्यापार अरथै निषेध. रोगादि कारणें चाहीजै तेहनी जयणा. दुपद- चोपद मोल लेखी वेचवा-वेचाववा निषेध. घरना दास-दासी कुपात्र नीवडे तेहनी जयणा. लैहणै आवै तेहनी जयणा. विष, लोह, हथीयार, तरवार, पाछणां, भाला, कटार, कुहाडो, तीर, बरछी, बंदुक प्रमुख शस्त्र व्यापार अरथै पोतानी ष्टाइं निषेध.

घाणी, चरखा, अटीया, कोलु, घरटी, जंत्र प्रमुख व्यापार अरथें निषेध. षासीकरम करावावा, वंधाववा निषेध. छोरानां नाक, कांन विंधाववानी जयणा. दव देवा-दिरावावा निषेध. सरोवर, द्रह, तलाव, सोषवा-सोषावा

निषेध. अस्तीपोषण, मंजरी, मांकडा, चूया, साहेली, कबूतर, मुगा, कुता प्रमुख पोताना करी पोषवा निषेध. अनुकंपाहेतुनी जयणा. इति करमादांन.

हवे नीलवणनी विगत लिखीइ छै. खुरबुंजा, पतीरा, काकडी उनालुं, लालकाकडी, मेथी, सरग, मोगरी, तोरु, गवारफली नीली, नीबूं, नीलो होला, सेक्या चिणारा, तरकारी निब्भे पान नागरवेलरी, मकीयो, मुली, मीरच, गवहवास, गुंदा, वड, पीपड, गंबा, दाडिम, नारंगी, नींबादिकना पांत ने सरीर जातें असमांधें जोईजै तेहनी जयणा छै. इत्यादिक नीलवण आंक ४ भरी छै ते वावरवी मोकली. बीजी सरव निषेध. रोगादिक कारणै, काल दुकालें, भेलसंभेल, औषध वेषधनी जयणा.

आठमें **अनरथडंड विरमण** व्रतें - भवया, वजाणीया, किरतनीया, नायका, नाटकीया, होली ताकतो हलीया, सती काठ जलती, चोर मारतो, अस्त्री-पूरुषनी मैथून उदीरी जोवा निषेध. घर तथा सगासंबंधीनी जयणा.

नवमैं **सामायक** व्रतें - मास एक प्रतें सामायक करुं-३०. जुदा न वणें तो पडिकमणानी भेली गिणुं. रोगादिक कारणें जयणा.

दसमें **देसावगासिक** व्रतें - चउद नियम नित प्रतें संभारूं, संखेवूं. विसरै तो बीजै दिनें नीलवण न वावरूं. मारगै चालतां तथा रोगादिक कारणें जयणा.

इग्यारमें **पोसह** व्रतें - वरस प्रतें पोसो-१ छती जोगवाइइं बनें तो करुं. न बनैं तो भावना भाउं, उपवास करूं.

बारमै **अतिथिसंविभागै** व्रते - बनें तो अतिथिसंविभाग करूं, न बनें तो भावना भाउं.

ए व्रत जेहवै भांगै पचखांण करवा छै, तेह भांगें पालवा. विसमृतें, अविवेके, अनाउपयोगैं, भूलाचूकानी जयणा.

इति बारह-१२ व्रतनी टीप संपूर्णम्.

सं. १८८४ वर्षे मति मृगशिर सुदि ८ दिने पं. श्री**धनविजयजी माणकविजय** पासें **बाइ मदैकवर** १२ व्रतकी टीप उचरी छै.

—*—

स्वाध्याय

आगमसूत्रों के शुद्धपाठ के निर्णयविषयक कुछ विचारबिन्दु

– आचार्य श्रीरामलालजी म.

[कुछ समय पूर्व हमें इस लेख की प्रति विचारार्थ एवं सुझावप्रदान हेतु प्राप्त हुई । वाचकों के लिए वह लेख उपयोगी जानकर, लेखकश्री की अनुमति लेकर, यहाँ उसे अविकल रूप से प्रस्तुत किया जा रहा है । इस विषय में जो कुछ भी संशोधनीय प्रतीत हो, उसे सहेतुक अवश्य प्रस्तुत करावें ऐसा विद्वज्जनों से लेखकश्री का हार्दिक अनुरोध है ।

यह स्पष्टता आवश्यक है कि इसमें लिखित-प्ररूपित सब विचारबिन्दु निर्विवादरूप से सम्मतियोग्य या अनुमोदनीय ही हैं ऐसा सम्पादक का मन्तव्य नहि है । इस पर भी बहुत कुछ चर्चा हो सकती है - होनी चाहिए । विशेष रूप से लेखकश्री का वाचना में एकरूपता लाने का आग्रह उपयुक्त प्रतीत नहि होता । अनेकरूपता प्राकृत भाषा की निजी विशिष्टता है, उसे हम समाप्त नहि कर सकतें ।

इसी तरह जहाँ अर्थभेद नहि होता - नहि हो सकता, जैसे कि उक्कट्ठं/उक्किट्ठं, वहाँ उपलभ्यमान वैकल्पिक रूपाख्यानों में से किसी एक को चुनना स्वतन्त्र रुचि पर निर्भर होता है । वहाँ किसी एक पाठ को हम 'शुद्ध' गिनाकर दूसरों का इनकार नहि कर सकतें । हालाँकि उनमें प्राचीनता-अर्वाचीनता का विवेक अवश्य हो सकता है, परन्तु जहाँ अगस्त्यचूर्णि में प्रारम्भ में 'उक्कट्ठं' पाठ है, वहीँ आगे जाकर एक से अधिक बार 'उक्किट्ठं' देखने मिलता है । तो 'उक्कट्ठं' को ही प्राचीन, अतः 'शुद्ध' गिनाने में क्या प्रयोजन ? और 'उक्किट्ठं' इतना प्रचलित होते हुए भी उसे स्वीकार करने में हिचकिचाहट क्यों ? जब अगस्त्य-सिंहसूरि स्वयं दोनों को समानरूप से प्रयोजित करते हैं, तो हम उसमें आपत्ति क्यों उठायें ?

रही बात अर्थभेदक पाठभेदों में से किसी एक के स्वीकार की । लेखकश्री का मन्तव्य ऐसे स्थल पर किसी एक को 'शुद्ध' गिनने का है । बहुतायत

यह बात सच हो सकती है, पर सब जगह नहि । जैसे कि दश० ७.३८ में 'कायतिज्ज' पाठ प्रचलन में है । जब कि अगस्त्यचूर्णि आदि के अनुसार 'कायपिज्ज' पाठ ही शुद्ध है ऐसा वे सूचित करते हैं । लेकिन हम गौर से देखें तो वृद्धविवरण चूर्णि, हारिभद्री वृत्ति आदि में 'कायतिज्ज' पाठ ही सम्मत है, तो हम उसे 'अशुद्ध' कैसे गिन सकते हैं ? 'कायपिज्ज' पाठ अगस्त्यचूर्णि में स्वीकृत होने मात्र से प्राचीन/शुद्ध नहि हो जाता, क्योंकि उसमें भी 'कायतिज्ज' पाठान्तररूप में स्वीकृत है ही । वस्तुतः ऐसे स्थानों पर किसी एक पाठ को हम बाह्य प्रमाणों के बल पर प्राधान्य या गौणता दे सकते हैं, शुद्ध/अशुद्ध नहि ठहरा सकतें, ऐसी हमारी समझ हैं ।

ऐसे कुछ अन्य भी चर्चास्पद विचार इसमें हो सकते हैं । फिर भी कुल मिलाकर यह लेख एक नई सोच हमें देता है, अभी भी कितना कार्य इस क्षेत्र में करना शेष है इसका दिशानिर्देश करता है, इसमें सन्देह नहि । आशा और अपेक्षा है कि यह रवैया यदि ऐसे ही घूमता रहा तो अवश्य कुछ ना कुछ सत्य-नवनीत मिलता रहेगा ।

ध्यातव्य है कि लेखकश्री की ओर से हमें प्राप्त हुई इस लेख की साइकलोस्टाइल कोपी काफी अस्पष्ट थी । लिखावट भी कुछ अव्यवस्थित रूप में थी । कइं पन्ने पढना तो नामुमकिन सा लग रहा था । फिर भी मुद्रक ने भारी जेहमत उठाकर उसका टङ्कन किया है । हमने भी प्रूफ में शुद्ध करने का काफी प्रयास किया है । फिर भी कुछ जगह क्षति होने की सम्भावना है ही। उसके लिए हम लेखकश्री और वाचकों के प्रति क्षमाप्रार्थी हैं ।

- त्रै.मं.]

*

''णमो सिद्धाणं''
जिणो भवेज्जा जिणमच्चिउं हं,
जिणेण वुत्तं अवि साहमाणो ।
जिणा समायायसुयं अहिज्ज,
जिणस्स होऊण जिणे सभत्ती ॥

'पढमं नाणं तओ दया', 'नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा' इत्यादि आगमोक्तियों से श्रुत का महत्त्व निर्विवाद प्रसिद्ध है । तीर्थंकर ज्ञातपुत्र श्रमण

भगवान महावीर द्वारा तीर्थ-स्थापना के अनन्तर उनकी विद्यमानता में एवं उनके निर्वाण के पश्चात् भी सैंकड़ो वर्षों तक श्रुतग्रहण की जो विधि प्रचलित थी उसमें अनेक कारणों से परिवर्तन हुआ । फलस्वरूप वर्तमान में श्रुतग्रहण का कुछ भिन्न रूप परिलक्षित होता है । प्राप्त ज्ञात इतिहास के अनुसार भगवान के निर्वाण के लगभग ९८० वर्षों बाद आगमों का लेखनकार्य हुआ। उससे पूर्व तक आगम कण्ठस्थ ही थे एवं गणधर भगवन्तों से प्रारम्भ करके तब तक के आचार्योपाध्याय बिना किसी लिखित आगम के सहारे अपने श्रीमुख से ही सूत्रार्थ की वाचना प्रदान करते थे एवं अध्येता शिष्यवर्ग भी श्रवण-मात्रपूर्वक सूत्रार्थ को धारणामति में स्थापित करके दीर्घकाल तक अवस्थित रखते एवं यथासमय अन्यों को वाचना प्रदान करते थे । आगमों के लेखन के पश्चात् शनैः-शनैः वाचनापद्धति में परिवर्तन आने लगा । कण्ठस्थ ज्ञान कम होता गया एवं लिखित का आश्रय बढ़ता गया । 'स्मरणशक्ति की मन्दता एवं लिखित पर निर्भरता' - ये दोनों एकदूसरे को पोषण देती हुई निरन्तर बढ़ती गई । परिणामस्वरूप लिखित सामग्री का विस्तार होता गया एवं मुद्रणयुग के आने पर विपुल मात्रा में आगम एवं अन्य साहित्य का प्रकाशन होकर यत्र-तत्र अनेकत्र उनकी उपलब्धि होने लगी।

यद्यपि मौखिक वाचनाकाल में भी स्मृतिरूप धारणाशक्ति की अदृढ़ता आदि से सूत्रपाठों में क्वचित् किञ्चित् अन्तर आना असंभाव्य नहीं था । तथापि आगमलेखन का कार्य प्रारम्भ होने के पश्चात् लेखक की सहजसंभव स्खलनाओं एवं आगममुद्रण का युग आ जाने पर मुद्रणदोष की बहुलताओं आदि कारणों से तो यह अन्तर बढ़ता हुआ ही चला गया । फलस्वरूप किस पुस्तक का पाठ सही एवं किसका गलत, यह निर्णय करना कठिन हो गया एवं विद्यार्थियों, अध्येताओं के समक्ष एक असमंजस की स्थिति बनने लगी । अस्तु ।

आगम त्रिविध प्रज्ञप्त है - सूत्रागम, अर्थागम एवं तदुभयागम । सूत्रशुद्धि से ही अर्थशुद्धि संभव है । अतः तदर्थ भी सूत्रशुद्धि अपेक्षित है । अर्थागम के साथ अनिवार्यतः सम्बद्ध मूलपाठनिर्णय की भावना उन-उन प्रसंगों पर

विशेष बलवती बनती गई, जब साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविकाओं द्वारा यह प्रश्न प्रस्तुत होता कि अलग-अलग पुस्तकों के सूत्रपाठों में भिन्नता है, किसे सही माना जाए एवं किसे कण्ठस्थ किया जाए ? सम्यक् अन्वेषण के बिना किसी को सही, किसी को गलत कहना उपयुक्त नहीं बन पाता । धीरे-धीरे इस बात की आवश्यकता प्रबलता से अनुभूत होने लगी कि उपलब्ध होने वाले आगम संबंधी अनेक पाठभेदों में से सही पाठों का निर्णय करके प्रत्येक आगम का एक सुनिश्चित स्वरूप निर्धारित कर लिया जाय । धारणा की एकरूपता से अनेक प्रश्न स्वतः समाहित हो सकेगें ।

यथासमय कार्य का आरम्भ हुआ । कुछ समय पूर्व श्रीदशवैकालिक सूत्र सम्बन्धी पाठों का सप्रमाण निर्णय परिपूर्णता को प्राप्त हुआ ।

कार्य के प्रारम्भ से लेकर अद्यावधि प्रगति के मध्य समागत आरोह-अवरोहों के विवरण की अपेक्षाओं को लेख्य लाघवार्थ गौण करके, प्रस्तोतव्य बिन्दुशः प्रस्तुत है ।

१. आगमपाठनिर्णय की आगमिकता
२. पाठभेद के कारण
३. आगमप्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी की संशोधनपद्धति का सारसंक्षेप.
४. मुनिश्री पुण्यविजयजी द्वारा स्वीकृत पाठों को यथावत् स्वीकार न करने के कारण
५. पाठनिर्णय हेतु हमारे द्वारा स्वीकृत पाठनिर्णयपद्धति
६. स्वीकृत पाठनिर्णयपद्धति का श्रीदशवैकालिक सूत्र के सन्दर्भ में सोदाहरण विचार
७. उपसंहार
८. पाठनिर्णय में प्रयुक्त हस्तलिखित प्रतियों का विवरण (परिशिष्ट-१)
९. पाठनिर्णय में प्रयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (परिशिष्ट-२)
१०. प्रस्तुत प्रारूप में प्रयुक्त संदर्भ संबंधी संकेत सूची एवं कुछ ज्ञानतव्य (परिशिष्ट-३)

आगमपाठनिर्णय की आगमिकता :

''द्वादशाङ्गी गणधरकृत एवं अन्यान्य आगम पूर्वधरकृत है । उनकी

समीक्षा का प्रयत्न क्या तीर्थङ्कर भगवतों एवं आगमकार महापुरुषों की घोर आशातना का भयंकर दुस्साहस नहीं है ?'' यह प्रश्न आगमों के प्रति परम आस्थाशील जिनशासनभक्त का होना बहुत सहज है एवं होना भी चाहिए । किन्तु जैसे हमारी एक नज़र एक ही आगम की चूर्णियों, टीकाओं, विभिन्न हस्तलिखित सूत्रप्रतियों एवं अनेक मुद्रित संस्करणों पर जाएगी एवं हमें किसी में कुछ, किसी में कुछ अन्य एवं किसी में कुछ और अन्य ही पाठ दृष्टिगोचर होगा तो हमारे प्रश्न की दिशा मुड़ जायेगी एवं हम सोचने लगेंगे कि क्या इस बात का निर्णय नहीं होना चाहिए कि कौन-सा पाठ वास्तविक है व कौन-सा नहीं ? यही प्रश्न आगमपाठ के निर्णय की दिशा में प्रेरित करता है।

पाठभेद के कारण :

१. वाचनाभेद
२. भाषागत परिवर्तन
३. अर्वाचीन सम्पादकों का प्रभाव
४. लिपिदोष का प्रभाव
५. प्राचीन लिपि में प्रायः समान दिखने वाले अक्षरों को स्पष्टता से लिखने या समझने की भूल
६. चूर्णि, टीका आदि के प्रकाशन से पूर्व उनके अवधानता पूर्वक शुद्ध सम्पादन का अभाव
७. आगमों के लेखनकाल में प्रयुक्त संक्षिप्तीकरण पद्धति का प्रभाव
८. अध्यापनकाल में विषय को समझाने हेतु सूत्रप्रति पर अन्य गाथा आदि का लेखन.

१. वाचनाभेद :

श्रीनन्दीसूत्र में कहा है - ''इच्चेयं दुवालसंगं गणिपिडगं ण कयाइ णाऽऽसी ण कयाइ ण भवति ण कयाइ ण भविस्सति, भुविं च भवति च भविस्सति य, धुवे णिअए सासते अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे'' अर्थात् यह द्वादशाङ्गी नित्य एवं शाश्वत है । यह कथन अर्थ की अपेक्षा से है। शब्दात्मक परिवर्तन विभिन्न तीर्थङ्कर भगवन्तों के समय में रहे हैं यह आगमों में स्पष्टतः प्रमाणित है ।

प्राप्त इतिहास के अनुसार भगवान के निर्वाण के लगभग एक सौ साठ (१६०) वर्ष पश्चात् द्वादशवर्षीय दुष्काल के समाप्त हो जाने पर पाटलिपुत्र में आगमसूत्रों की वाचना को व्यवस्थित करने का प्रथम प्रसंग बना ।[१] उसके कुछ शताब्दियों बाद पुनः द्वादशवर्षीय दुष्काल पडा जिसके पश्चात् वीर-निर्वाण संवत् आठ सौ सत्ताईस (८२७) से संवत् आठ सौ चालीस (८४०) के बीच मथुरा में श्रीस्कन्दिलाचार्य के नेतृत्व में तथा वलभी में श्री-नागार्जुनाचार्य के नेतृत्व में वाचनाएँ हुई ।[२] द्वादशवर्षीय दुष्काल में भिक्षाप्राप्ति हेतु मुनियों के यत्र-तत्र बिखर जाने के कारण व्यवस्थित वाचना, पर्यटना आदि के अभाव में सूत्रविस्मरण आदि कारणों से उन वाचनाओं के माध्यम से सूत्रों को पुनः व्यवस्थित किया गया एवं दोनों आचार्यों का परस्पर मिलन न हो पाने के कारण क्वचित् पाठभेद हो गए ।[३] तत्पश्चात् वीरनिर्वाण संवत् नौ सौ अस्सी (९८०) में माथुर संघ के युगप्रधान श्रीदेवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने वलभीपुर में संघ को एकत्र करके आगमों का लेखन करवाया।[४]

२. भाषागत परिवर्तन :

संभवतः क्षेत्रीय प्रभाव के कारण विभिन्न क्षेत्रों के मुनियों द्वारा किए जाने वाले आगमों के उच्चारण में व्यञ्जनप्रधान (होति, गच्छति, अतीते) एवं लोपप्रधान (होइ, गच्छइ, अईए) इत्यादि अन्तर आने लगा । साथ ही कहीं 'जधा, तधा, गाधा', तथा कहीं 'जहा, तहा, गाहा' इत्यादि रूप व्यञ्जनान्तर भी होने लगे । इसके अतिरिक्त प्राकृत व्याकरणानुसार होने वाले वैकल्पिक रूप यथा - करेंति-करंति, देंतियं-दिंतियं, निक्खित्तं-णिक्खित्तं, पुच्छेज्जा-पुच्छिज्जा, दोण्हं-दुण्हं, उट्ठिया-उट्ठिआ, न-ण, च-य, ओल्लं-उल्लं इत्यादि विभिन्न शाब्दिक अन्तर (किन्तु समान अर्थवाले) उच्चारण एवं लेखन में

१, २, ३, ४ = सुयगडंगसुत्तं (सं. मुनि श्री जम्बूविजयजी) प्रस्तावना, पृ. ३०

१. (क) आवश्यक चूर्णि, भाग २, पृष्ठ १८७
   (ख) परिशिष्ट पर्व, नवम सर्ग ।
२. (क) नन्दीचूर्णि (ख) कहावली (भद्रेश्वरसूरि)
३. (क) कहावली (भद्रेश्वरसूरि) (ख) ज्योतिषकरण्डक-टीका, पृष्ठ ४१
४. (क) समाचारीशतक (उपाध्याय समयसुंदर)
   (ख) कल्पसूत्रसुबोधिका षष्ठ व्याख्यान (पत्र २१७ - हर्षपुष्पामृतग्रंथ माला)

इतने अधिक प्रचलित हो गए कि इनमें वास्तविक-अवास्तविक का निर्णय अशक्यप्राय हो गया । चूर्णिकारों के समय में तकारान्त एवं व्यञ्जनप्रधान शब्दों की बहुलता रही है, पर उनमें कहीं-कहीं ऐसे शब्द भी आ गए है जिनमें व्यञ्जनविशेष की उपस्थिति का कारण शोध पाना कठिन है यथा - चाति (त्यागी के अर्थ में), सतणाणि (शयनानि के अर्थ में) । त्यागी के अर्थ में श्रीअगस्त्यचूर्णि में प्रयुक्त 'चागि' शब्द तो बोधगम्य है, पर इसी चूर्णि में अन्यत्र प्राप्त 'चाति' में तकार का आगमन किस कारण से हुआ एवं इसी प्रकार 'शयनानि' की जगह 'सतणाणि' में तकार किस कारण से लिया गया, यह व्याख्यायित करना कठिन है ।

३. अर्वाचीन सम्पादकों का प्रभाव :

मुद्रणयुग आने पर आगमों के सम्पादकों के प्रभाव से भी अनेक पाठभेद प्रचलित हो गए । आगमों के प्रकाशन का प्रथम बृहत् कार्य अजीमगंज (बंगाल) के राय धनपतसिंह बहादुर ने सन् १८७४ में शुरू किया । लेकिन इसमें पदविभाग, विरामचिह्न, पैराग्राफ इत्यादि के बिना प्रायः हस्तलिखित के समान ही आगमप्रकाशन हुआ । इसके पहले प्राप्त जानकारी के अनुसार एक-दो विदेशी विद्वानों ने ही कल्पसूत्र एवं श्रीभगवतीसूत्र के कुछ अंश प्रकाशित किए थे । सन् १८७९ से १९१० तक विदेशी सम्पादकों यथा डॉ. हर्मन जेकोबी, होर्नले, शुब्रिंग आदि ने प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों का सहारा लेकर श्रमपूर्वक श्रीआचारांग, श्रीऔपपातिक, श्रीआवश्यक, श्रीउपासकदशा आदि का सम्पादन किया एवं वे ग्रन्थ प्रकाशित हुए । सन् १९१६ से १९२० के अन्तर्गत आचार्य श्रीअमोलक ऋषिजी म.सा. के हिन्दी अनुवाद सहित बत्तीस आगम हैदराबाद के लाला सुखदेव सहायजी की तरफ से प्रकाशित हुए । सन् १९१५ में प्रारम्भ करके आचार्य श्रीसागरानन्दसूरीश्वरजी द्वारा सम्पादित टीका सहित आगम आगमोदय समिति-सूरत से प्रकाशित होने लगे एवं आगमोदय समिति के माध्यम से अनेक आगमों एवं चूर्णियों, टीकाओं आदि का प्रकाशन हुआ । आगमोदय समिति के प्रकाशनों के पश्चात् भी घासीलालजी म.सा. के माध्यम से बत्तीस आगमों पर कार्य हुआ । पुप्फभिक्खू द्वारा सम्पादित 'सुत्तागमे' प्रकाश में आया, जिन पर आगमोदय समिति के आगमों का अत्यन्त प्रभाव

रहा ।[१] ज्ञातव्य है कि 'सुत्तागमे' के सूत्रपाठों में 'पुप्फभिक्खू' (मुनि श्री फूलचन्दजी म.सा.) द्वारा पुष्टावलम्बन एवं विशिष्ट प्रमाणों के बिना अप्रामाणिक पाठपरिवर्तन कर दिये जाने के कारण 'श्रमणसंघीय कार्यवाहक समिति' ने 'सुत्तागमे' के प्रकाशन को अप्रामाणिक घोषित किया था । तथा श्री अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस की साधारण सभा (लुधियाना, २०-२१ अक्टूम्बर सन् १९५६) में तत्संबंधी प्रस्ताव पारित किया ।[२] उसके पश्चात् स्थानकवासी समुदाय में प्रकाशित अधिकांश आगमों का प्रकाशन आगमोदय समिति प्रदत्त पाठों का प्रायः अनुसरण करता रहा है । स्वाध्यायमाला आदि में भी प्रायः उसी का अनुसरण हुआ है । प्रचलित पाठों में उत्पन्न अनेक विकृतियों का जनक 'आगमोदय समिति' का यही अन्धानुकरण रहा है । इस बात को स्पष्ट करने के लिए अधिक नहीं तो कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना जरूरी जान पड़ता है ।

श्रीनन्दीसूत्र के प्रारम्भ में समागत गाथाओं में से 'सुमुणियणिच्चाणिच्चं'... (गाथा ४६) का वर्तमान प्रचलित स्वरूप यह है –

सुमुणियणिच्चाणिच्चं सुमुणियसुत्तत्थधारयं वंदे ।
सब्भावुब्भावणया तत्थं लोहिच्चणामाणं ॥

यहाँ 'वंदे' से लेकर 'णामाणं' तक का पाठ न चूर्णि एवं टीका में व्याख्यात है न ही किसी भी प्राचीन सूत्रप्रति में उपलब्ध है । परन्तु 'आगमोदय समिति' ने इस पाठ को स्थान दिया है एवं वह पाठ प्रचुर प्रचलित हो गया। इसके स्थान पर चूर्णि, टीका एवं प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के अनुसार जो पाठ होना चाहिए वह इस प्रकार है –

सुमुणियणिच्चाणिच्चं सुमुणियसुत्तत्थधारयं **णिच्चं** ।
वंदे हं लोहिच्चं, सब्भावुब्भावणातच्चं ॥

आचार्य श्रीअमोलक ऋषिजी द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र में भी 'आगमोदय समिति' वाला पाठ नहीं है, बल्कि उपर्युक्त शुद्ध पाठ ही है । (केवल चौथे चरण में 'तच्चं' के स्थान पर 'णिच्चं' छपा है)

१. नन्दिसुत्तं अणुओगद्दाराइं च, सं. मुनि पुण्यविजयजी, प्रस्तावना पृ. ३-४
२. आचार्य श्रीगणेशीलालजी म.सा. का जीवनचरित्र, पृष्ठ ३१७-३१९ (द्वितीय संस्करण)

श्रीनन्दीसूत्र में मिथ्याश्रुत के प्रकरण में 'बुद्धवयणं' के बाद 'तेरासियं' पाठ वर्तमान में प्रचलित है एवं आगमोदय समिति के पाठ में भी है । जबकि 'तेरासियं' यह शब्द किसी प्राचीन प्रति में प्राप्त नहीं है ।

श्रीदशवैकालिकसूत्र के प्रथम अध्ययन की प्रथम गाथा (१/१) के प्रथम चरण में 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं' यह पाठ वर्तमान में प्रायः सर्वत्र प्रचलित है एवं आगमोदय समिति द्वारा मुद्रित पाठ भी इसी प्रकार का है । जबकि अत्यन्त किसी प्राचीन सूत्रप्रति में 'मुक्किट्ठं' पाठ प्राप्त नहीं है । मुनि श्रीपुण्यविजयजी को तो यह पाठ किसी सूत्रप्रति में नहीं मिला एवं हमें भी विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के पूर्व की किसी सूत्रप्रति में यह पाठ नहीं मिला । प्राचीन प्रतियों में 'मुक्कट्ठं' यही पाठ एकस्वर से मिलता है । बल्कि अर्वाचीन हस्तलिखित प्रतियों में भी 'मुक्कट्ठं' पाठ ही 'मुक्किट्ठं' की अपेक्षा बहुत अधिक मिलता है । यहाँ तक कि आचार्य श्रीअमोलक ऋषिजी म.सा. ने भी 'मुक्कट्ठं' पाठ को ही स्वीकार किया है, जिससे ऐसा माना जा सकता है कि तब तक भी 'मुक्कट्ठं' के उच्चारण की परम्परा रही होगी । अगस्त्यचूर्णि में भी गाथाप्रतीक के रूप में पहले 'मुक्कट्ठं' पाठ ही दिया है। तदनन्तर गाथा के व्याख्याप्रसंग में मुक्कट्ठं एवं मुक्किट्ठं दोनों प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार वृद्धविवरण (एक अन्य चूर्णि) में भी उभयरूप पाठ प्राप्त होते है । इस प्रकार सभी प्राचीनतर सूत्रप्रतियों में एकमात्र 'मुक्कट्ठं' पाठ होने एवं दोनों चूर्णियों में भी यह पाठ होने पर भी 'आगमोदय समिति' द्वारा 'मुक्किट्ठं' पाठ के स्वीकार के कारण ही 'मुक्किट्ठं' की विशाल परम्परा चल पड़ी है जबकि यहाँ 'मुक्कट्ठं' पाठ ज्यादा संगत है ।

'मुक्कट्ठं' पाठ की शुद्धता इस बात से विशेष पुष्ट होती है कि श्रीनिशीथचूर्णि, समवायांगवृत्ति, नंदीचूर्णि, नंदी-हरिभद्रीयवृत्ति तथा नन्दी-मलयगिरिवृत्ति में आए इस गाथांश के उद्धरण में भी 'मुक्कट्ठं' पाठ ही आया है ।

['तत्थ पढमसुत्तं पढम-सिलोगो । तत्थ उभयभेदो दरिसिज्जति । ''धम्मो मंगलमुक्कट्ठं'' एवं सिलोगो पढियव्वो' - श्रीनिशीथचूर्णि, पीठिका भाष्य गाथा २० की चूर्णि (भाग १, पृष्ठ १३)]

[''कहं छिन्नछेदणतो त्ति भण्णति ? उच्यते - जो णयो सुत्तं छिन्नं छेदेण इच्छति, जहा - ''धम्मो मंगलमुक्कट्ठं'' इति सिलोगो'' - श्रीनन्दीचूर्णि, पृष्ठ ७४]

[''यथा धम्मो मंगलमुक्कट्ठं' इत्यादि श्लोकः '' - श्रीसमवायांगसूत्र पर अभयदेवकृत वृत्ति पृष्ठ ८२ एवं २४८ (संपा.- मुनि जंबूविजयजी) ।]

[''इह जो णओ सुत्तं अछिन्नं छेदेण इच्छइ सो अच्छिन्नच्छेदणयो, जहा - ''धम्मो मंगलमुक्कट्ठं'' ति सिलोगो'' - श्रीनन्दीसूत्र पर हारिभद्रीय वृत्ति सूत्र - १०८ पृष्ठ ८७]

[इह यो नाम नयः सूत्रं छेदेन छिन्नमेवाभिप्रैति न द्वितीयेन सूत्रेण सह सम्बन्धयति, यथा - ''धम्मो मंगलमुक्कट्ठमिति'' - श्रीनन्दीसूत्र पर मलयगिरिवृत्ति, संवत् १९०९ में लिखित हजारीमल बहादुरमल बाँठिया के संग्रह (ABL) की हस्तलिखित प्रति, पत्रांक २६०ब]

इसके साथ ही कसायपाहुड की जयधवला टीका में आगत इस गाथांश के उद्धरण में भी 'मुक्कट्ठं' पाठ ही प्राप्त होता है ।

[''संपहि सुदणाणस्स पदसंखा वुच्चदे । तं जहा एत्थ पमाणपदं, अत्थपदं, मज्झिमपदं, तिविहं पदं होदि । तत्थ पमाणपदं अट्ठक्खरणिप्फण्णं, जहा ''धम्मो मंगलमुक्कट्ठं'' इच्चाइ - कसायपाहुड गाथा १ पर जयधवला टीका, 'पेज्जदोसविहत्ती' नामक प्रथम अर्थाधिकार, अनुच्छेद क्रमांक ७१, भाग-१, पृष्ठ ९०-९१]

श्रीदशवैकालिकसूत्र के तृतीय अध्ययन की तृतीय गाथा (३/३) में वर्तमान में 'संबाहणा' एवं 'संपुच्छणा' ये पाठ प्रचलित है एवं आगमोदय समिति के मुद्रित पाठ भी ऐसे ही है । जबकि चूर्णि, वृत्ति एवं किसी भी प्राचीन हस्तलिखित सूत्र-प्रति में ये पाठ इस रूप में नहीं है । वस्तुतः यहाँ 'संबाहण' एवं 'संपुच्छण' पाठ शुद्ध है ।

श्रीदशवैकालिकसूत्र के पञ्चम अध्ययन के प्रथम उद्देशक की अड़सठवीं गाथा (५/१/६८) में प्रचलित ''तन्निस्सिया जगे'' में 'जगे' यह इस रूप में किसी प्राचीन सूत्रप्रति आदि में उपलब्ध नहीं है, किन्तु आगमोदय समिति

ने इस पाठ को स्वीकार किया है । वस्तुतः यहाँ 'जगा' यह पाठ स्वीकार्य है ।

श्रीदशवैकालिकसूत्र के सातवें अध्ययन की पैंतीसवीं गाथा (७/३५) में प्रचलित ''संसाराओत्ति आलवे'' में 'संसाराओ' पाठ किन्हीं प्राचीन सूत्रप्रतियों, टीका, चूर्णि आदि में उपलब्ध नहीं है । किन्तु आगमोदय समिति ने इसे स्वीकारा है । जबकि वास्तव में 'ससाराओ' यह पाठ शुद्ध है ।

श्रीदशवैकालिकसूत्र के दसवें अध्ययन की दसवीं गाथा (१०/१०) में ''संजमे धुवं जोगेण जुत्ते'' भी एक ऐसा ही अशुद्ध पाठ है, जो आगमोदय समिति के प्रभाव से प्रचलित जान पड़ता है ।

ऐसे अन्य भी अनेक उदाहरण विद्यमान हैं जो यह दिखाते है कि आगमोदय समिति के पाठों के अविचारित अनुकरण से विकृत पाठों का कितना विस्तार हुआ है । इतना ही नहीं, श्रीसागरानंदसूरिजीने अनेक स्थानों पर सूत्रपाठों को (व टीकापाठों को) कम कर दिया है या बढ़ा दिया है या सुधार दिया है, इस विषय में मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने लिखा है कि यदि वे उन स्थानों पर कोई कोष्ठक या निशान कर देते तो भविष्य के संशोधक विद्वानों के लिए वह विशेष अनुकूल रहता ।

उपर्युक्त लेखन का उद्देश्य किसी भी प्रकार से श्रीसागरानन्दसूरिजी की टीका-टिप्पणी करना नहीं है अपितु मात्र यह सूचित करना है कि प्रचलित पाठों में किस-किस कारण से बदलाव आया है । इससे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि पश्चाद्वर्ती आगमकार्यों में सर्वांशतः उनका अनुकरण हुआ ही है अथवा उनके पाठों में सर्वत्र अशुद्धियाँ ही रही हैं । बल्कि उनके विषय में मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने यह भी कहा कि जिस वेग से उनका आगमकार्य हुआ, उसे देखते हुए उनमें अपेक्षाकृत कम ही त्रुटियाँ रही हैं । संभव है उन्होंने पाठनिर्णय में विभिन्न कुल वाली अनेक हस्तलिखित प्रतियों को आधार बनाकर विचारपूर्वक पाठ निर्णय न किया हो तथा किन्हीं एक-दो अशुद्ध प्रतियों का आधार बनाकर स्वमत्यनुसार संशोधनादि करके उन्हें प्रकाशित कर दिया हो ।

(४) लिपिदोष का प्रभाव :

सूत्रप्रतियों की अशुद्धता भी पाठभेद का एक बहुत बड़ा कारण बनी है । लेखन के साथ अशुद्धि का दामन-चोली जैसा सम्बन्ध कहा जाय तो भी शायद अतिशयोक्ति नहीं होगी । अत्यन्त सावधान व जागरूक लेखकों द्वारा भी लेखनकार्य में त्रुटि होना प्रायः अपरिहार्य बन जाता है, यह वर्तमान के प्रत्यक्ष अनुभव से भी सिद्ध है ही । प्रतियों की अशुद्धता की समस्या प्राचीन टीकाकारों के समक्ष भी व्याघ्री के समान मुँह बाये खड़ी थी जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं ने किया है । यथा -

''अज्ञा वयं शास्त्रमिदं गभीरं, **प्रायोऽस्य कूटानि च पुस्तकानि** (श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र-वृत्ति - श्रीअभयदेवसूरि) हम अल्पज्ञ हैं, यह शास्त्र गहन है और इसकी पुस्तकें (सूत्रप्रतियाँ) प्रायः अशुद्ध हैं ।''

''यस्य ग्रन्थवरस्य वाक्यजलंधेर्लक्षं सहस्राणि च,
चत्वारिंशदहो! चतुर्भिरधिकं मानं पदानामभूत् ।
तस्योच्चैश्चुलुकाकृतिं विदधतः कालादिदोषात् तथा,
दुर्लेखात् खिलतां गतस्य कुधियः कुर्वन्ति किं मादृशाः ॥

(श्रीसमवायाङ्गसूत्र-वृत्ति - श्रीअभयदेवसूरि)

जिस वाक्यसमुद्र स्वरूप श्रेष्ठ ग्रन्थ (श्रीसमवायाङ्गसूत्र) का प्रमाण एक लाख चौवालीस हजार पदों का था, काल आदि के दोष से बिना जोती हुई भूमि जैसी अवस्था को प्राप्त उस ग्रन्थ पर एक चुल्लु भर जल स्वरूप कृति (टीका) की रचना करते हुए मेरे जैसे दुर्बुद्धि क्या कर पा रहे हैं ?*''

''वाचनानामनेकत्वात् **पुस्तकानामशुद्धितः** ।
सूत्राणामतिगाम्भीर्यान्मतभेदाच्च कुत्रचित् ॥
क्षूणानि सम्भवन्तीह केवलं सुविवेकिभिः ।
सिद्धान्तानुगतो योऽर्थः सोऽस्माद् ग्राह्यो न चेतरः ॥

(श्रीस्थानाङ्गसूत्रवृत्ति - श्रीअभयदेवसूरि)

---

* वस्तुतः इस श्लोक का ऐसा अर्थ होना चाहिए –
''जिस वाक्यसमुद्र तुल्य श्रेष्ठ ग्रन्थ का प्रमाण एक लाख चौंवालीस हजार पदों का था, वह आज कालादि के दोष से चुल्लुभर शेष रह गया है (अर्थात् उसका छोटा सा अंश ही आज बचा है), और वह भी दुर्लेखन के कारण कूट अवस्था को प्राप्त कर चूका है; तो इसमें मेरे जैसे मन्दबुद्धि लोग क्या करें ?''– **सं.** ।

वाचनाओं की विभिन्नता होने से, **पुस्तकों (सूत्रप्रतियों) की अशुद्धि के कारण,** सूत्र अतिगम्भीर होने से तथा कहीं-कहीं मतभेद होने से यहाँ (व्याख्या में) भूल होना सम्भव है, अतः विवेकी पुरुष इसमें से (टीका में से) जो सिद्धान्तानुसारी अर्थ हो उसे ही ग्रहण करें, सिद्धान्तविरुद्ध को नहीं।''

''आदर्शेषु लिपिप्रमादस्तु सुप्रसिद्ध एव ।

(श्रीजम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिवृत्ति - वाचक श्रीशांतिचंद्र, पत्रांक ३२४ अ)

सूत्रप्रतियों में लिपिप्रमाद का होना तो सुप्रसिद्ध ही है ।''

''इह च प्रायः **सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यन्ते**, न च टीकासंवादी एकोप्यादर्शः समुपलब्धः अत एकमादर्शमङ्गीकृत्यास्माभिर्विवरणं क्रियत इति, एतदवगम्य सूत्रविसंवाददर्शनाच्चित्तव्यामोहो न विधेय इति ।''

[श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्रवृत्ति - श्रीशीलाङ्काचार्य, पत्रांक ३३६अ]

यहाँ प्रायः सूत्रप्रतियों में भिन्न-भिन्न सूत्रपाठ प्राप्त होते हैं, टीका-(चूर्णि)संवादी [टीका(चूर्णि)सम्मत सूत्रपाठ वाला] एक भी आदर्श (सूत्रप्रति) उपलब्ध नहीं हुआ । अतः एक ही सूत्रप्रति को स्वीकार करके हमारे द्वारा टीका रची जा रही है, ऐसा जानकर कहीं सूत्रों में भिन्नता दिखाई दे तो चित्त में व्यामोह नहीं करना चाहिए ।''

प्राचीन लिपि में प्रायः समान दिखने वाले अक्षरों को स्पष्टता से लिखने या समझने की भूल का प्रभाव :

लिपिदोष के अतिरिक्त पूर्व प्रति को देखकर उसके आधार पर नवीन प्रतिलिपि उतारते समय पूर्व लिपिगत अक्षरों को समझने में होने वाली भूल भी बहुधा अपरिचित लिपिकार को भ्रान्त बना देती है । फलस्वरूप अक्षरों आदि में व्यत्यय हो जाता है । इसे समझने के लिए श्रीदशवैकालिकसूत्र के पञ्चम अध्ययन के प्रथम उद्देशक की ७३ वीं गाथा (३/१/७३) में आगत ''**अत्थियं** तिंदुयं बिल्लं, उच्छुखण्डं च सिंबलिं'' - इस पाठ को ले । यहाँ 'अत्थियं' को कोई 'अच्छियं' पढ़ते हैं । प्राचीन लिपि में च्छ = च्छ है तथा त्थ = त्थ है । अनेकशः लिपिकारों ने त्थ को भी च्छ के समान लिख दिया है जिससे निर्णय अत्यन्त दुष्कर हो गया है । यहाँ मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने

'अच्छियं' पाठ स्वीकारा है लेकिन श्रीभगवतीसूत्रगत पाठ 'अत्थिय तेंदुय बोर' [श्रीभगवतीसूत्र शतक २२, वर्ग ३, सूत्र १ (मजैवि, मधु.)] तथा श्रीप्रज्ञापनासूत्रगत पाठ 'अत्थिय तिंदु कविट्ठे' [श्रीप्रज्ञापनासूत्र, पद १, सूत्र ५१, गाथा १६ (मजैवि, मधु.)] तथा श्रीजीवाजीवाभिगमसूत्रगत पाठ 'अत्थिय तेंदुय...' [श्रीजीवाजीवाभिगमसूत्र, प्रथम प्रतिपत्ति, सूत्र २० (मधु) १/७२ (ते)] में बिना पाठान्तर के प्राप्त 'अत्थियं' के अनुसार यहाँ भी '**अत्थियं** तिंदुयं बिल्लं' पाठ उपयुक्त है ।

इसी प्रकार प्राचीन लिपि में 'ब्भ' एवं 'ज्झ' की समस्या है । ब्भ = ब्भ तथा ज्झ = ज्झ ऐसा लिखा जाता है । अनेक लिपिकार ब्भ एवं ज्झ को एक समान लिखते हैं । इसी कारण से श्रीदशवैकालिकसूत्र के नवम अध्ययन के द्वितीय उद्देशक की तृतीय गाथा (७/२/३) के पाठ ''**वुज्झइ** से अविणीअप्पा कट्ठं सोयगयं जहा'' में 'वुब्भइ' पाठ है या 'वुज्झइ' पाठ है इसका निर्णय अत्यन्त कठिन हो गया है । यहाँ श्रीअगस्त्यचूर्णि में 'वुज्झति' पाठ लिया है तथा वृद्धविवरण की हस्तलिखित प्रति में 'वुब्भइ' पाठ माना जा रहा है (मुद्रित वृद्धविवरण में 'वुज्झई' ही है) इसके अतिरिक्त कुछ हस्तलिखित सूत्रप्रतियों में 'वुज्झइ' है तथा कुछ में 'वुब्भइ' है ।

[''एवं अविणयबहुलो वुज्झति से अविणीयप्पा''

— अगस्त्यचूर्णी, पृष्ठ २१२]

['वुज्झइ से अविणीअप्पा एवं सो विणेओ चंडादिसु वट्टमाणो अविणीअप्पा वुज्झइ, कहं ? जहा नदीसोयमज्झगयं कट्ठं नदीए सोतेण वुज्झइ, एवं सो संसारसोतेण वुज्झति त्ति ।

— वृद्धविवरण, पत्रांक ३१०]

मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने यहां 'वुब्भइ' पाठ माना है । हैम व्याकरण में 'ब्भो दुह-लिह-वह-रुधामुच्चातः' (८-४-२४५) से 'वुब्भ' रूप ही बनाया गया है एवं रिचार्ड पिशल ने भी जर्मन भाषा में लिखे ग्रन्थ (इंग्लिश नाम Grammar of the Prakrit Languages)में 'वुब्भ' को ही व्याकरणसंगत बताया है । इसके बावजूद जहाँ 'वुज्झइ' पाठ ही उचित है ।

इसका कारण यह है कि श्रीसूत्रकृतांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के ग्यारहवें

अध्ययन की तेईसवीं गाथा (१/११/२३) में इसी अर्थ में 'वुज्झमाणाण' शब्द बिना पाठान्तर के प्राप्त होता है । श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र के द्वितीय संवर द्वार के द्वितीय 'सत्य' अध्ययन में भी 'वुज्झइ' का प्रयोग प्राप्त होता है । इसी प्रकार श्रीउत्तराध्ययनसूत्र के तेईसवें केशीगौतमीय अध्ययन में भी ६५वीं एवं ६८वीं गाथा (२३/६५, ६८)में 'वुज्झमाणाण' शब्द इसी अर्थ में बिना पाठान्तर के प्राप्त होता है । उक्त तीनों आगमों में इसी पाठ को स्वीकारा है ।

[''वुज्झमाणाण पाणाणं, कच्चंताण सकम्मुणा''

– श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्र १/११/२३/५१७ (मजैवि. मधु.)]

[''महाउदगवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं''

– श्रीउत्तराध्ययनसूत्र २३/६५ (मजैवि. स्वा.)]

[''जरामरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिणं''

– श्रीउत्तराध्ययनसूत्र २३/६८ (मजैवि. स्वा.)]

[''सच्चेण य उदगसंभमंमि वि न वुज्झइ''

– श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र, श्रुतस्कंध २, अध्ययन २, सूत्र १२० (मधु.)]

इसके अतिरिक्त आचारांगसूत्र की चूर्णिसम्मत वाचना, तत्त्वार्थसूत्र की सिद्धसेनगणि कृत टीका में आगत आचारांगसूत्र का उद्धरण, आचारांगसूत्र की चूर्णि, निशीथचूर्णि, भक्तपरिज्ञाप्रकीर्णक, पउमचरियं, गाथासप्तशती (गाहाकोस), वैराग्यशतक, प्रश्नव्याकरणवृत्ति तथा इसिभासियाइं में भी 'वुज्झ' धातु के प्रयोग प्राप्त होते हैं ।

[''सो अणासातए अणासायमाणे वुज्झमाणाणं पाणाणं''

– श्रीआचारांगसूत्र १/६/५/१९७ (मजैवि. मधु.)]

[प्रोक्तं हि भगवद्भिः – ''उट्ठिएसु... इत्यादि यावत् वुज्झमाणाणं जहा से दीवे असंदीणे ।''

– तत्त्वार्थसूत्र पर सिद्धसेनगणिकृत वृत्ति, पृष्ठ २४]

[''वुच्चति – ''वुज्झमाणाणं पाणाणं ४ वाहिज्जमाणाणं वा''

– आचारांगचूर्णि पत्रांक २४०]

[णातिदूरं वुज्झति । मज्झिमो दूरतरं । निरातो सुदूरं वुज्झति''

– आचारांगचूर्णि १/२/२/६० (भाग १, पृष्ठ १०६)]

[''कंटगेसु वा विज्झति, उदगवाहेण वा वुज्झइ''

– निशीथचूर्णि (भाष्यगाथा ३१२६) भाग ३, पृष्ठ १२२]

[''पहसियफेणाए मुणी नारिनईए न वुज्झति''

– भक्तपरिज्ञा गाथा १२९]

[''मरणतरङ्गग्गाए संसारनईए वुज्झमाणस्स''

– पउमचरियं, पर्व ८३ श्लोक ४]

[''वुज्झंतस्स महामुणि । हत्थावलम्बं महं देहि''

– पउमचरियं पर्व १०२, श्लोक २००]

[उदएण वुज्झमाणं, सबालवुड्ढाउलं दीणं''

– पउमचरियं पर्व १०२, श्लोक २५]

[''वुज्झसि पियाइ समयं तह विहुरे भणसि कीस किसरत्ति''

– गाथासप्तशती, तृतीय शतक, गाथा २५]

[''वासासुऽरण्णमज्झे, गिरिनिज्झरणोदगेहिं वुज्झंतो''

– वैराग्यशतक, गाथा ८२ (सन्मार्ग प्रकाशन, संपादक – श्रीपुण्यकीर्तिसूरि]

[उदकसम्भ्रमस्तत्रापि 'न वुज्झइ'त्ति वचनपरिणामान्नोह्यन्ते न प्लाव्यन्ते''

– प्रश्नव्याकरणसूत्र, अभयदेवकृत वृत्ति, द्वितीय संवरद्वार]

[''बीए संवुज्झमाणम्मि, अंकुरस्सेव संपदा''

– इसिभासियाइं १५/६]

श्री हेमचन्द्राचार्य से पूर्व हुए वररुचि(कात्यायन)कृत प्राकृतव्याकरण 'प्राकृतप्रकाश' पर वसन्तराजकृत 'प्राकृतसंजीवनी' नामक टीका है । उसके अनुसार – ''दुहि-लिहि-वहा दुज्झ-लिज्झ-वुज्झाः[1] (अध्याय ७ सूत्र ६३) – इस सूत्र से 'वह' धातु का कर्मवाच्य में 'वुज्झ' आदेश होता है ।

क्रमदीश्वरकृत संक्षिप्तसार के अन्तर्गत 'प्राकृताध्याय' नामक प्राकृत-व्याकरण के अध्याय ४ सूत्र ७९ की वृत्ति में दुह-दुज्झ, लिह-लिज्झ, वह-वज्झ कहा है ।

उपर्युक्त अनेकविध प्रमाणों के आधार से यहाँ 'वुज्झइ' पाठ स्वीकारा गया है । यह बात इससे भी पुष्ट होती है कि हेमचन्द्राचार्य द्वारा इसी सूत्र

1. The Prakrit Grammarians (pg. 56) by Luigia - Nitti-Dolci.

में 'दुह' का 'दुब्भ' आदेश किया गया है लेकिन प्राकृतप्रकाश की उपर्युक्त टीकानुसार दुह का 'दुज्झ' आदेश होता है । इसी 'दुज्झ' संबंधी पाठ श्रीदशवैकालिकसूत्र के सातवें अध्ययन में ''तहेव गाओ दोज्झाओ'' के रूप में प्राप्त होता है तथा श्रीआचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध के चतुर्थ अध्ययन के द्वितीय उद्देशक में [२/४/२/५४१] में, ''गाओ दोज्झा ति वा'' रूप में प्राप्त होता है एवं वर्तमान मे भी इसी रूप का प्रयोग देशी भाषा में 'दोझा' आदि के रूप में होता है । यहां बहुत संभव है कि 'ब्भ' और 'ज्झ' को पढ़ने में अंतर न समझ पाने का प्रभाव व्याकरण के मूल ग्रन्थों पर भी पड़ा हो । मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने भी 'भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखन कला' नामक अपनी पुस्तक में यह स्वीकार किया है कि ''लेखकों के भ्रांतिमूलक और विस्मृतिमूलक लेखन का असर शब्दशास्त्र (व्याकरणशास्त्र) पर बड़े प्रमाण में हुआ होगा ।'' (पृ. ५६)

सिद्धहैमशब्दानुशासन में 'वह' का कर्मवाच्य में 'वुब्भ' आदेश हो गया है । परवर्ती प्राकृतवैयाकरणों पर उसका अत्यन्त प्रभाव होने से परवर्ती व्याकरणों एवं ग्रन्थों में 'वुब्भ' पाठ देखा जाता है किन्तु उपर्युक्त प्रमाणों से 'वुज्झ' पाठ असंदिग्ध रूप से शुद्ध सिद्ध होता है ।

उपर्युक्त दो उदाहरणों से यह भलीभाँति समझा जा सकता है कि समान दिखने वाले अक्षरों के कारण किस प्रकार पाठभेद बन गए हैं । बहुत से पाठभेद मात्र शब्दान्तर से संबंधित हैं । उनके कारण अर्थान्तर का प्रसंग नहीं बना है । लेकिन अनेक पाठभेद इस प्रकार के भी हो गए है जिनमें अर्थान्तर प्रकट होता है । बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि व्याख्याकार के समक्ष अशुद्ध सूत्रप्रति होने पर उसे ही सही मानकर अशुद्ध पाठ के अनुसार व्याख्या कर देने से गलत अर्थ प्राप्त होने के कारण सम्यक् पाठ का निर्णय और भी जटिल हो जाता है ।

(६) चूर्णि, टीका आदि के प्रकाशन से पूर्व अवधानतापूर्वक शुद्ध सम्पादन का अभाव :

वर्तमान में विशेषतः प्रचलित तथा आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित अनेक चूर्णियाँ, टीकाएँ आदि श्रीसागरानन्दसूरिजी द्वारा सम्पादित हैं । प्रकाशन से पूर्व अनेक हस्तलिखित टीकाप्रतियों के आधार से धैर्यपूर्वक सम्पादन किए

बिना इनका प्रकाशन हुआ है, ऐसा टीका की हस्तलिखित प्रतियों से मुद्रित प्रति के अन्तर को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है ।

उदाहरणार्थ - उन्होनें श्रीदशवैकालिकसूत्र के नवम अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक की पन्द्रहवीं गाथा (९/४/१५) की टीका में यह पाठ दिया है - किंविशिष्टो मुनिरित्याह - जिनमतनिपुणः आगमे प्रवीणः'' । उपर्युक्त टीकापाठ से ऐसा लगता है कि ''जिणमयनिउणे'' ऐसा सूत्रपाठ होना चाहिए । (किसी-किसी स्वाध्यायमाला में भी यही पाठ है ।) जबकि हारिभद्रीय टीका की प्राचीन हस्तलिखित प्रति में यह पाठ है - 'किंविशिष्टो मुनिरित्याह - जिनवचननिपुणः आगमे प्रवीणः' (हस्तलिखित हारिभद्रीय टीका पत्रांक २५५ अ) इसके अनुसार 'जिणवयनिउणे' यह सूत्रपाठ शुद्ध है । दोनों चूर्णियों एवं अनेक सूत्रप्रतियों से भी 'जिणवयनिउणे' पाठ की सिद्धि होती है ।

ऐसे अन्य भी अनेक उदाहरण हैं । मुद्रित वृद्धविवरण एवं वृद्धविवरण की हस्तलिखित प्रतियों (हवृवि १, हवृवि २, हवृवि ३)[२] के फर्क के कुछेक उदाहरणों की सूची प्रस्तुत है –

अध्ययन / गाथा	मुद्रित का पृष्ठ-पंक्ति	मुद्रित वृद्धविवरण	हस्तलिखित वृद्धविवरण
७/४३	२६०-४	अचिअत्तं	०अचिंतं
९/३/१४	३२४-४	जयणाए रओ	जयणापरो
१०/४	३४१-४	पुढवितणकट्ठं	पुढविदगकट्ठं०
१०/१६	३४५-१२	अगिद्धिए	अगढिए
चू १/१	३५३-४,७,८	०पडागा०	०पडागार०
चू २/१०	३७४-२	णिउणं सहायं० सिलोगो	णिउणं सहायं० इन्द्रवज्रा

१. दशवैकालिकचूर्णि, सम्पादक : श्रीसागरानंदसूरिजी, प्रकाशक - श्रीऋषभदेव केसरीमलजी पेढ़ी, रतलाम, संवत् १९८९

२. हस्तलिखित प्रतियों की संज्ञाओ एवं लेखनकालादि सम्बन्धी विवरण ''परिशिष्ट क्रमांक १'' में दिया गया है ।

यदि कोई ऐसे अशुद्धतः सम्पादित-मुद्रित चूर्णियों एवं टीकाओं के आधार से मूलपाठ का निर्णय करें तो वह कार्य कितना त्रुटिपूर्ण हो सकता है, यह सहज ही समझा जा सकता है ।

यहाँ प्रसंगोपात्त यह जानना अपेक्षित है कि टीकाओं एवं चूर्णियों की जो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त होती है, उनमें मूल गाथाओं का लेखन नहीं किया जाता । मूल गाथा लिखे बिना ही मात्र हर गाथा की व्याख्या लिखी जाती है । व्याख्या पढ़ने से ही समझ में आता है कि इस गाथा की व्याख्या की जा रही है ।

कहीं कहीं तो सम्पादक ने प्राचीन हस्तलिखित टीका में जिस गाथा की व्याख्या प्राप्त नहीं है, ऐसी गाथा की व्याख्या तक को मुद्रित में स्थान दे दिया है यथा –

''एतदेव स्पष्टयति - यदा च कुकुटुम्बस्य - कुत्सितकुटुम्बस्य कुतप्तिभिः - कुत्सितचिन्ताभिरात्मनः संतापकारिणीभिर्विहन्यते - विषयभोगान् प्रति विघातं नीयते तदा स मुक्तसंयमः सन् परितप्यते पश्चात् । क इव ? यथा हस्ती कुकुटुम्बबन्धनबद्धः परितप्यते''

[दशवैकालिक सूत्र, हारिभद्रीय टीका पत्रांक २७५[१] (४/१९४)[२]]

यह पाठ हस्तलिखित हारिभद्रीय टीका (हहाटी २ तथा हहाटी ३) में नहीं है, लेकिन मुद्रित में इसका प्रक्षेप हो गया है । यदि कोई अशुद्ध मुद्रित के आधार पर सूत्रपाठ का निर्णय करें तो उसे इस व्याख्या को पढ़कर ऐसा आभास होगा कि यह व्याख्या इस गाथा के आधार पर की गई है –

जया य कुकुडुंबस्स कुत्ततीहिं विहम्मई ।
हत्थी व बंधणे बद्धो, स पच्छा परितप्पई ॥

[दशवैकालिकसूत्र, चू. १/७ (स्वा.)]

हस्तलिखित टीकाप्रति में उपर्युक्त व्याख्या ही नहीं है, जिससे स्पष्ट हो

१. सम्पादक : सागरानंदसूरि, प्रकाशक - देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, संवत् १९७४

२. प्रकाशक : कमल प्रकाशन ट्रस्ट, संवत् २०६६

जाता है कि मूल सूत्र में यह गाथा ही नहीं है । तदनुसार सूत्र में यह गाथा है ही नहीं ।

७. आगमों के लेखनकाल में प्रयुक्त संक्षिप्तीकरण पद्धति का प्रभाव :

लेखनकाल में संक्षिप्तीकरण के प्रयोगों के कारण भी कभी-कभी पाठभेद बन जाया करते हैं । लेखन का कार्य आज जितना सरल व सुकर है वह आज से लगभग १५०० वर्ष पहले, जब आगमों का लेखन प्रारम्भ हुआ, उतना आसान नहीं था । ताड़ वृक्ष के पत्तों को कठिनाई से प्राप्त करना, उनमें भी कुछ पत्ते बहुत लम्बे तो कुछ छोटे, कुछ चौड़े, फिर उन्हें लेखन-योग्य बनाने की प्रक्रिया करना । मुनिवर्ग के लिए तो लेखन करना एवं पुस्तक रखना भी प्रायश्चित्त का कारण था । ऐसी अनेक परिस्थितियों के कारण आगमलेखनकाल में लिपिकारों ने 'जाव', 'वण्णओ', 'जहा पण्णवणाए' संग्रहणी गाथाओं इत्यादि अनेक तरीकों से ऐसा उपाय करना चाहा कि कम से कम लिखना पड़े । कालान्तर में आगमों का वह मूल विस्तृत स्वरूप लुप्तप्राय हो गया एवं संक्षिप्तीकरण से युक्त आगमपाठों का प्रचलन हो गया। संक्षिप्तीकरण की इस प्रक्रिया के कारण भी अनेक पाठभेदों का निर्माण हो गया । क्योंकि कहीं किसी ने एक संक्षिप्त पाठ को विस्तार दिया, कहीं किसी ने दूसरे संक्षिप्त पाठ को । इसके अतिरिक्त क्वचित् पूर्व में असंक्षिप्त स्थलों पर भी संक्षेप कर दिया गया ।

इस सम्बन्ध में एक उदाहरण को लें -

श्रीदशवैकालिकसूत्र के पञ्चम अध्ययन के प्रथम उद्देशक की गाथा ३२ से ३६ (५/१/३२-३६) इस प्रकार प्रचलित हैं –

पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण ण ।
दिंतियं पडियाइक्खे, ण मे कप्पइ तारिसं ॥३२॥
एवं उदउल्ले ससिणिद्धे, ससरक्खे मट्टिया ऊसे ।
हरियाले हिंगुलए, मणोसिला अंजणे लोणे ॥३३॥
गेरुयवण्णियसेडिय, सोरट्ठियपिट्ठकुक्कुसकए य ।
उक्किट्ठमसंसट्ठे, संसट्ठे चेव बोद्धव्वे ॥३४॥

असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिज्जमाणं ण इच्छिज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे ॥३५॥
संसट्ठेण य हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिज्जमाणं पडिच्छेज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥३६॥

इन गाथाओं में ३३वीं तथा ३४वीं गाथाएं 'संग्रहणी गाथाएँ' है ।

दोनो चूर्णियों में तथा प्राचीन 'जे' प्रति में इन दो (गाथा ३३ व ३४) संग्रहणी गाथाओं के स्थान पर सतरह गाथाएँ खुली-खुली प्राप्त होती है । वे इस प्रकार हैं –

पुरेकम्मेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
उदओल्लेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
ससिणिद्धेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पठियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
ससरक्खेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
मट्टियागतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
ऊसगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
हरितालगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
हिंगुलुयगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
मणोसिलागतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण ता ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
अंजणगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥

लोणगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
गेरुयगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
वण्णियगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
सेडियगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
सोरट्ठियगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
पिट्ठगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
कुक्कुसगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
उक्कुट्ठगतेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
देंतियं पडियाइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं ॥
असंसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिज्जमाणं न इच्छेज्जा, पच्छाकम्मं जहिं भवे ॥
संसट्ठेण हत्थेण, दव्वीए भायणेण वा ।
दिज्जमाणं पडिच्छेज्जा, जं तत्थेसणियं भवे ॥

मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने भी खुली गाथाओं वाले उपर्युक्त पाठ को ही स्वीकार किया है । खुली गाथाएँ होना संमत भी है क्योंकि संग्रहणी गाथाओं (३३-३४) में 'असंसट्ठे' व 'संसट्ठे' इन दोनों पदों के होने पर भी पुनः खुले रूप से 'असंसट्ठेण' एवं 'संसट्ठे' पद से युक्त गाथाएँ (३५-३६) संग्रहणी गाथाओं के पश्चात् प्रस्तुत की गई हैं जिससे 'द्विरुक्ति' का प्रसंग बनता है।

इतना ही नहीं, संग्रहणी गाथा (३४) में आए 'संसट्ठे' पद से संसृष्ट दर्वी, भाजन आदि से प्रदत्त आहार अकल्प्य सिद्ध होता है, जबकि अग्रिम गाथा (३६) से संसृष्ट दर्वी, भाजन आदि से प्रदत्त आहार कल्पनीय माना गया है।

जिससे 'पूर्वापर विरोध' आता है ।

चूर्णियों में विद्यमान खुली गाथाओं वाले पाठ को स्वीकारने पर 'द्विरुक्ति' एवं 'पूर्वापर विरोध' - ये दोनों दोष स्वतः निवृत्त हो जाते है। अतः यहाँ संग्रहणी गाथाओं की जगह खुली खुली गाथाओं वाला पाठ स्वीकारा गया है ।

'जाव' पाठ के अन्यत्र आए विस्तार से उस स्थान के पाठ में कहीं - कहीं कुछ अन्तर होता है जिसे प्राचीन काल के आगमज्ञ मुनिवर समझते थे । पर कालान्तर में वह अन्तर परिज्ञात नहीं रह पाया एवं विस्तार वाले स्थान के तुल्य पाठ समझ लेने से भी पाठभेद किंवा अर्थभेद भी हो गया।

(८) अध्यापनकाल में विषय को समझने हेतु सूत्रप्रति पर अन्य गाथा का लेखन :

पाठभेद का एक अन्य कारण आगमों का अध्यापन या व्याख्यान करते समय व्याख्याता द्वारा विषय को समझाने हेतु सूत्र के पन्ने पर ही किनारे किसी अन्य गाथा आदि को लिख देना है, जिसे उत्तरवर्ती लिपिकार भ्रान्तिवश मूलपाठ में सम्मिलित कर लेते हैं। ऐसा मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने श्रीनन्दिसूत्र के सम्पादकीय (पृ. २४) में संकेतित किया है ।

आगमप्रभाकर मुनि श्रीपुण्यविजयजी की संशोधनपद्धति का सार-संक्षेप

श्रीदशवैकालिकसूत्र के पाठनिर्णय पर अब तक जिन विद्वज्जनों ने कार्य किया है उनमें आगमप्रभाकर मुनि श्रीपुण्यविजयजी का नाम विशेषतः उल्लेखनीय है । उन्होंने अत्यन्त धैर्य एवं परिश्रमपूर्वक अनेक आगमों के सम्पादन का कार्य किया है ।

श्रीनन्दीसूत्र एवं अनुयोगद्वारसूत्र की प्रस्तावना लिखते हुए उन्होंने अपनी आगम-संशोधनपद्धति का जो उल्लेख किया है उसका संक्षिप्त सार यहाँ प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा । उन्होंने अपनी पद्धति को मुख्यतः छः बिन्दुओं में समाहित किया है ।

१. ''लिखित प्रतियों का उपयोग'' - भिन्न-भिन्न कुल+ की प्राचीनतम हस्तलिखित ताड़पत्रीय प्रतियों एवं कागज़ की हस्तलिखित प्रतियों से उन्होंने मूलपाठ का अक्षरशः मिलान किया एवं पाठान्तरों की नोंध करके उन पर यथायोग्य विचारपूर्वक निर्णय किया ।

२. ''चूर्णि, टीका, अवचूरि आदि का उपयोग'' - सूत्र पर लिखित चूर्णि, वृत्ति, टीका आदि की हस्तलिखित प्रतियाँ लेकर पहले उन्हें संशोधित करना एवं फिर उन व्याख्याओं में प्राप्त प्रतीकों* एवं सूत्रानुरागों (व्याख्याओं) के आधार पर मूलपाठ का निर्णय करना मुनिश्री को अभीष्ट रहा है एवं उन्होंने ऐसा अनुभवपूर्ण परामर्श भी दिया है कि मुद्रित अशुद्ध चूर्णि, टीका आदि के आधार से सूत्रपाठ का निर्णय करना उचित नहीं है । किसी भी ग्रन्थ का संशोधन करने से पूर्व उसके व्याख्यासाहित्य को हस्तलिखित प्रतियों के आधार से संशोधित करके तत्पश्चात् ही मूलग्रन्थ के संशोधन में प्रवृत्ति करनी चाहिए, क्योंकि मुद्रित चूर्णियों एवं टीकाओं में अनेक पाठ अशुद्ध है।

३. ''आगमिक उद्धरणों का उपयोग'' - अन्य आगमिक व्याख्याओं अथवा अन्य ग्रन्थों में 'संशोध्य आगम' के सूत्रों के जो उद्धरण प्रसंगोपात्त आए हैं, उनके आधार पर भी सूत्र में उपलब्ध पाठ पर विचार करना ।

४. ''अन्य आगमों में आए सूत्रपाठों से तुलना'' - प्रस्तुत सूत्र की गाथाओं इत्यादि से मिलतेजुलते पाठ या समानार्थक पाठ अन्य आगमों में प्राप्त

+ सूत्रप्रतियों के प्रसंग में जो सूत्रप्रतियाँ किसी एक सूत्रप्रति के ही क्रमिक अनुसरण रूप होती हैं तथा जिनमें प्रायः समानता पाई जाती है, उन्हें एक 'कुल' की सूत्रप्रतियाँ कहा जाता है ।

* चूर्णिकार एवं टीकाकार अपनी चूर्णियों एवं टीकाओं में मूलपाठ को अक्षरशः नहीं लिखते । जिस गाथा की व्याख्या प्रारम्भ की जा रही है उसके प्रारम्भ के या कदाचित् मध्यवर्ती शब्द या शब्दों को लिखकर व्याख्या करते है । उन आगमशब्दों को 'प्रतीक' कहा जाता है जो इस बात के प्रतीक होते हैं कि अमुक गाथा की व्याख्या की जा रही है यथा ''धम्मो मंगलमुक्कट्ठं'त्ति सिलोगो'' (श्रीअगस्त्यचूर्णि) । यहाँ 'धम्मो मंगलमुक्कट्ठं' प्रतीक है । ज्ञातव्य है कि गाथा के कुछेक शब्द ही प्रतीकरूप में मिल पाते हैं, गाथा के सभी शब्द नहीं । शेष शब्दों को व्याख्या के आधार पर निर्धारित किया जाता है ।

हो उनसे तुलना करके पाठनिर्णय करना ।

५. पूर्व के संशोधकों द्वारा की गई अशुद्धियों का विवेक ।

६. लिपिकारों द्वारा की गई अशुद्धियों का विवेक ।

मुनि श्रीपुण्यविजयजी की शैली के अनुसार मुनि श्रीजम्बूविजयजी आदि ने भी आगमसम्पादनकार्य किया है ।

मुनिश्री की सम्पादनपद्धति के इस संक्षिप्त सार को यहाँ प्रस्तुत करने के दो प्रमुख प्रयोजन हैं - प्रथम तो यह है कि हमने भी मुख्यत: इसी पद्धति का लक्ष्य रखा है एवं दूसरा यह कि अनेक स्थलों पर हमने मुनिश्री के पाठ को यथावत् स्वीकारा है ।

मुनि श्रीपुण्यविजयजी द्वारा स्वीकृत पाठों को यथावत् स्वीकार न करने के कारण

इतना होने पर भी मुनि श्रीपुण्यविजयजी के पाठ को सम्पूर्णत: स्वीकार नहीं करने के भी कुछ विशिष्ट कारण हैं जिनका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है –

(१) जहाँ-जहाँ चूर्णिसम्मत पाठ एवं वृत्तिसम्मत पाठ में भिन्नता है, वहाँ-वहाँ हमने अधिकांशत: चूर्णिसम्मत पाठ को महत्त्व दिया है, जबकि मुनि श्रीपुण्यविजयजी की शैली अधिकांशत: वृत्तिसम्मत पाठ को प्राधान्य देने की रही है । इसका मुख्य कारण यह है कि चूर्णियों का रचनाकाल वृत्तियों के रचनाकाल की अपेक्षा प्राचीन है ।

व्याख्याग्रन्थों का रचनाकाल -

व्याख्याग्रन्थ	रचनाकाल
श्रीअगस्त्यसिंह स्थविर कृत चूर्णि	विक्रम की तीसरी सदी, छठ्ठी सदी (मतान्तर)
अज्ञातकर्तृक चूर्णि (वृद्धविवरण)	विक्रम की आठवीं सदी (संभवत:)
श्रीहरिभद्र सूरि कृत वृत्ति	विक्रम की आठवीं सदी (संभवत:)
श्रीसुमतिसाधु कृत वृत्ति	विक्रम की बारहवीं सदी
श्रीतिलकाचार्य कृत वृत्ति	विक्रम की चौदहवीं सदी

प्राचीनता के साथ ही चूर्णिकार द्वारा की गई व्याख्याएँ अनेक स्थानों पर वृत्तिकृत व्याख्याओं की अपेक्षा आगम के हार्द को सम्यक् अभिव्यक्ति देने वाली रही है । यह आगे के पृष्ठों में आने वालें उदाहरणों के माध्यम से विशेषत: स्पष्ट हो सकेगा ।

(२) बहुत सारे स्थलों पर मुनि श्रीपुण्यविजयजी द्वारा स्वीकार नहीं किए गए पाठ के पक्ष में इतने सशक्त प्रमाण उपलब्ध हुए कि उनकी उपेक्षा करके मुनि श्रीपुण्यविजयजी के पाठ को स्वीकार करना सर्वथा अशक्य था ।

(३) मुनि श्रीपुण्यविजयजी के द्वारा इस सूत्रसम्बन्धी कार्य पूर्ण कर चुकने के पश्चात् जिन कोशों एवं अन्य ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ, उनसे भी शुद्ध पाठ के निर्णय में पर्याप्त सहायता मिली ।

(४) संयोग से हमें विक्रम संवत् १२२० में लिखी गई श्रीदशवैकालिकसूत्र की एक महत्त्वपूर्ण प्राचीनतम ताड़पत्रीय प्रति उपलब्ध हो गई जो मुनि पुण्यविजयजी द्वारा उपयुक्त प्रतियों में नहीं थी । इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण पाठ प्राप्त हुए ।

इत्यादि कारणों से श्रीदशवैकालिकसूत्र के पाठनिर्णय का पुरुषार्थ पुन: अपेक्षित था एवं उसका परिणाम भी यह आया कि शताधिक स्थलों पर शुद्ध पाठों का सम्यक् निर्णय फलीभूत हुआ, जिनमें से कई पाठों के निर्णय से सूत्रों में अन्तर्निहित विशिष्ट अर्थ की स्पष्टता हो पाई है ।

पाठनिर्णय हेतु हमारे द्वारा स्वीकृत पाठनिर्णयपद्धति

तीर्थङ्कर देवों के द्वारा प्ररूपित शुद्ध अर्थ एवं गणधर भगवन्तों द्वारा ग्रथित शुद्ध सूत्रपद से ज्योतिर्मय 'अट्ठपदोवसुद्ध' आगमों में 'हीणक्खरं, अच्चक्खरं' इत्यादि सदोष उच्चारण भी अतिचार का हेतु है तो तद्रूप वाचना-प्रवाह को प्रवाहित करने की सदोषता का तो कहना ही क्या ? इस तथ्य को आत्मसात् करते हुए, अष्टविध ज्ञानाचार में समाविष्ट 'व्यञ्जन, अर्थ एवं तदुभय' की शुद्धि को आत्मलक्ष्य के रूप में समक्ष रखते हुए तथा चतुर्विध संघ शुद्धसूत्रोच्चारण एवं शुद्ध अर्थावगमपूर्वक सिद्धिलक्ष्य की ओर अनवरत

सवेग गतिरत रहे – इस भावना से सूत्रपाठनिर्णय एवं अर्थनिर्णय के इस सागरतरणवत् सुदुष्कर एवं सुविशाल कार्य में प्रवृत्ति हुई । कार्य की प्रगति के साथ सतत प्रवर्धमान अनुभव से शुद्ध सूत्रपाठों के निर्णय हेतु जिन मानक बिन्दुओं का निर्धारण किया गया एवं जिनके आधार पर कुछ कार्य हुआ एवं हो रहा है, उन्हें पहले उल्लिखित किया जा रहा है एवं तदनन्तर उन पर यथापेक्ष सोदाहरण विचारणा प्रस्तुत की जा रही है ।

पाठनिर्णय हेतु प्रधान मानक बिन्दु इस प्रकार है :

१. सङ्गत अर्थ वाले पाठ को प्रधानता देना ।
२. अन्य आगमों में आए पाठों एवं अर्थ से सादृश्य रखने वाले पाठ को प्रधानता देना ।
३. प्राकृत किंवा अर्धमागधी में प्रचलित प्राचीन शब्दप्रयोगों को प्रधानता देना ।
४. व्याख्याग्रन्थो में कृत व्याख्या से ध्वनित होने वाले पाठों को प्रधानता देना ।
५. व्याख्याओं में भी चूर्णिद्वय में कृत व्याख्या से प्रकट होते पाठों को प्रधानता देना ।
६. प्राचीन सूत्रप्रतियों में मिलने वाले पाठ को प्रधानता देना ।
७. अन्यत्र उद्धृत सदृश पाठ को प्रधानता देना ।
८. व्याकरण संगत पाठों को प्रधानता देना ।
९. आवश्यक होने पर आयुर्वेदविज्ञान, वनस्पतिविज्ञान इत्यादि विषयक ग्रन्थों से संगत पाठ को प्रधानता देना ।
१०. क्वचित् छन्दःशास्त्र को महत्त्व देना ।
११. समानार्थक व्यंजनयुक्त / लोपयुक्त अथवा संयुक्त व्यंजन के पूर्व इ / ए, उ / ओ इत्यादि विषयों में मुनि श्रीपुण्यविजयजी द्वारा स्वीकृत पाठ को प्रधानता देना इत्यादि ।
१२. पाठ के वर्तमान में अधिक प्रचलन पर विशेष ध्यान न देकर शुद्ध पाठ को प्रधानता देना इत्यादि.

यहाँ सामान्य रूप से मानक बिन्दुओं का वर्णन किया है । तत्त्वतः शुद्ध पाठ के लक्ष्यपूर्वक यथास्थान किसी बिन्दु को प्रधानता एवं किसी बिन्दु

को गौणता देने का प्रसंग बनता है । अधिकतर अनेक बिन्दुओं का सम्यक् सुयोग ही पाठनिर्णायक बनता है ।

अब उपर्युक्त बिन्दुओं का श्रीदशवैकालिकसूत्र के सन्दर्भ में सोदाहरण विचार अवसरप्राप्त है ।

(१) पञ्चम अध्ययन के प्रथम उद्देशक की १२वीं गाथा (५/१/७२) 'विक्कायमाणं पसढं....' में 'रएण परिफासियं' पाठ प्रचलित है ।

हारिभद्रीय टीका में 'परिस्पृष्टं' इस प्रकार व्याख्या की गई है । टीकागत 'परिस्पृष्ट' को 'परिफासिय' का संस्कृत रूप मानकर शनैः शनैः 'परिफासियं' रूप प्रचलित हो गया, ऐसा संभव है । दोनों चूर्णिकारों ने यहाँ 'परिघासिय'(पडिघासिय) पद की व्याख्या की है ।

[रएण अरण्णातो वायुसमुद्धुतेण सच्चित्तेण समंततो घत्थं परिघासियं – अगस्त्यचूर्णी, पृष्ठ ११८]

[तत्थ वायुणा उद्धुएण आरण्णेण सच्चित्तेण रएण सव्वओ गुंडियं पडिघासियं भण्णइ – वृद्धविवरण, पत्र १८४]

दोनों चूर्णिकारों ने 'परिघासियं'(पडिघासियं) पाठ माना है । श्रीआचाराङ्गसूत्र में भी इसी अर्थ में यानी (रज से) 'भरे हुए' के अर्थ में 'परिघासिय' पाठ है –

[सीओदएण वा ओसित्तं रयसा वा परिघासियं
– श्रीआचाराङ्गसूत्र २/१/१/३२४ (मजैवि. मधु.)]

[रयसा वा परिघासितपुव्वे भवति – श्रीआचाराङ्गसूत्र २/१/३/३४२ (मजैवि., मधु.)]

यहाँ श्रीआचाराङ्गसूत्र में इस सन्दर्भ में कोई पाठान्तर भी प्राप्त नहीं है । साथ ही पा. १ (प्राचीनतम प्रति), पा. २, ला., को. २ – इन सूत्रप्रतियों में भी 'परिघासियं' पाठ ही है । उपर्युक्त प्रबल आधारों से यह स्पष्ट हो गया कि मूलतः 'परिघासियं' पाठ ही रहा है, 'परिफासियं' नहीं । अतः 'रएण परिघासियं' पाठ को ही स्वीकार किया गया है ।

(२) षष्ठ अध्ययन की १७ वीं गाथा (६/१७) 'मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं.....' में 'तम्हा मेहुणसंसग्गं' यह पाठ प्रचलित है ।

यहाँ अगस्त्यचूर्णि व वृद्धविवरण दोनों में 'संसग्गिं' पाठ स्वीकृत है ।

[तम्हा मेहुणसंसग्गिं तम्हादिति पढमभणितदोसकारणतो मेहुणसंसग्गी सम्पर्कः - अगस्त्यचूर्णि, पृष्ठ ११६]

[निग्गंथा सव्वपयत्तेण मेहुणसंसग्गी वज्जयंति त्ति

- वृद्धविवरण, पत्र २१९]

आचार्य हरिभद्र ने व्याख्या करते हुए लिखा है कि –

[मैथुनसंसर्गं - मैथुनसम्बन्धं योषिदालापाद्यपि निर्ग्रन्था वर्जयन्ति' - हारिभद्रीय वृत्ति, पत्रांक १९८ अ(३/१६४)]

संभवतः हारिभद्रीय टीका में समागत 'संसर्गं' को देखकर प्राकृत में 'संसग्गं' पाठ स्वीकारा जाने लगा हो । किन्तु वस्तुतः 'संसग्गिं' पाठ ही संगत है । 'संसग्ग' का ही संस्कृत रूपान्तरण 'संसर्ग' हो ऐसा नहीं है, 'संसग्गि' का भी संस्कृत रूपान्तर 'संसर्ग' ही होता है । इसी शास्त्र के ५/१/१० में 'संसग्गीए अभिक्खणं' पाठ है जबकि वहाँ भी टीका में 'संसर्गेण' पाठ ही उपलब्ध है । प्राकृत भाषा में इस प्रकार का स्वरपरिवर्तन होना असामान्य नहीं है ।

'संसग्गिं' पाठ की शुद्धता अनेक आगमप्रमाणों से सिद्ध है यथा -

[''**संसग्गि** असाहु रायिहिं, असमाहि उ तहागयस्स वि''

– श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्र १/२/२/१८ (मजैवि., मधु.)]

[''खुड्डेहिं सह **संसग्गिं** हासं कीडं च वज्जए''

– श्रीउत्तराध्ययनसूत्र १/९ (मजैवि., स्वा.)]

[''विभूसा इत्थी**संसग्गी**, पणीयरसभोयणं''

– श्रीदशवैकालिकसूत्र ८/५६ (मजैवि.) ८/५७ (स्वा.)]

श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र में चौथे आस्रव द्वार में अब्रह्म के तीस नामों में

एक नाम '**संसग्गि**' भी बताया है ।

[तस्स य णामाणि गोणाणि इमाणि होंति तीसं, तं जहा १. अबंभं, २, मेहुणं, ३. चरंतं, ४. **संसग्गि** ।

– श्रीप्रश्नव्याकरणसूत्र ८१ (मधु) ४/२ (ते)]

अतः षष्ठः अध्ययन में 'तम्हा मेहुणसंसग्गिं' पाठ का ही स्वीकार किया गया है ।

(३) प्रथम चूलिका के प्रथम सूत्र (चू. १/१) 'इह खलु भो ! पव्वइएणं .....' में 'हयरस्सि-गयंकुस-पोयपडागाभूयाइं' पाठ प्रचलित है ।

यहाँ दोनों चूर्णिकारों ने 'पडागार' पाठ मानकर व्याख्या की है ।

['हयरस्सि-गतंकुस-पोतपडागारभूताइं.... जाणवत्तं पोतो, तस्स पडागारो सीतपडो, पोतो वि सीतपडेण विततेण वीचीहिं ण खोभिज्जति इच्छितं च देसं पाविज्जति' – अगस्त्यचूर्णि, पृष्ठ २४७-२४८]

['जाणवत्तं पोतो, तस्स पडागारो सीतपडो' – वृद्धविवरण, पत्रांक ३५३]

श्रीतिलकाचार्य ने भी अपनी टीका में 'पडागार' पाठ मानकर व्याख्या की है ।

['किं विशिष्टानि ? हयरश्मिगजाङ्कुशपोतपटाकाराणि'

– तिलकाचार्यटीका, पृष्ठ ५०४]

उपर्युक्त सभी व्याख्याकारों ने यहाँ 'पटाकार' का अर्थ 'सितपट' (श्वेतवस्त्र) किया है जो जहाज में लगने वाले पाल को व्यक्त करता है । यह अर्थ यहाँ प्रकरण संगत भी है ।

'पडागार' पाठ पा. १, लासं., कोमू. २, से - इन प्रतियों में भी है।

उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त श्रीनिशीथसूत्र के भाष्य की चूर्णि में उपलब्ध पाठ में भी 'पडागार' प्राप्त होता है ।

[भाष्य गाथा - दुविहो वि वसभा, सारेंति गयाणि वा से साहिंति]
अट्ठारस ठाणाइं, हयरस्सिगयंकुसनिभाइं ॥

चूर्णि – 'दुविधो - लिंगतो विहारतो ओहावति । विहारओ ओहावंतस्स जाइं रइवक्काए अट्ठारस ठाणाइं हयरस्सिगतंकुसपोयपडागारभूताणि भणिताणि ताणि जइ तस्स गयाणि तो से वसभा सारेंति - संभरे तेसिं अच्छंति' ।

- श्रीनिशीथभाष्य व चूर्णि, भाष्य गाथा ४५८५, भाग ३ पृष्ठ ४५०]

हारिभद्रीय वृत्ति में इस सूत्र पर व्याख्या करते हुए कहा है कि –

['हयरश्मिगजाङ्कुशपोतपताकाभूतानि' – हारिभद्रीय वृत्ति, पत्रांक २७२ अ (४/१७९)]

यद्यपि हारिभद्रीय टीका 'पडागा' पाठ को व्यक्त करती है तथापि उपर्युक्त चूर्णि आदि के प्रमाणों से 'पडागार' पद सम्यक् सिद्ध होता है ।

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि अन्य आगमव्याख्या के स्थल सही पाठ के निर्णय की दिशा में किस प्रकार सहकार प्रदान करते हैं । यहाँ श्रीनिशीथचूर्णि में श्रीदशवैकालिकसूत्र की 'रइवक्का' चूलिका में आगत विषय बताया है जिससे यहाँ 'हयरस्सि-गयंकुस-पोयपडागार-भूयाइं' पाठ शुद्ध निर्णीत बनता है ।

(४) चतुर्थ अध्ययन के वायुकायअहिंसा-सम्बन्धी प्रकरण में (चौथी भिक्खुणी में)... 'पत्तेण वा पत्तभंगेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा.....' इस प्रकार का पाठ प्रचलित है ।

यहाँ दोनों चूर्णियों, हारिभद्रीय वृत्ति, सुमतिसाधु कृत वृत्ति, अवचूरि (मुद्रित) इत्यादि के अनुसार 'पत्तभंगेण वा' पाठ नहीं है ।

['पउमिणिपण्णमादी पत्तं । रुक्खडालं साहा तदेगदेसतो साहाभंगतो'

– श्रीअगस्त्यचूर्णि पृष्ठ ८९]

[पत्तं नाम पोमिणिपत्तादी, साहा रुक्खस्स डालं, साहाभंगओ तस्सेव एगदेसो' – वृद्धविवरण, पत्रांक १५६]

[तालवृन्तेन वा पत्रेण वा शाखया वा शाखाभङ्गेन वा...
'पत्रं' पद्मिनीपत्रादि, 'शाखा' वृक्षडालम्, 'शाखाभङ्गः' तदेकदेशः''

– हारिभद्रीय वृत्ति, पत्रांक १५४ अ(२/२९३)]

यहाँ व्याख्याकारों ने पत्र की व्याख्या के पश्चात् शाखा की एवं फिर शाखाभंग की व्याख्या की है । उनके समक्ष यदि 'पत्रभंग' का पाठ होता तो वे पत्र की व्याख्या के पश्चात् 'पत्रभंग' की व्याख्या करके फिर शाखा की व्याख्या करते ।

श्रीआचाराङ्गसूत्र में भी इसी विषय से सम्बन्धित पाठ है, वहाँ भी 'पत्तभंगेण वा' पाठ नहीं है ।

['से भिक्खू वा भिक्खूणी वा जाव समाणो.... तालियंटेण पत्तेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा.....'

– श्रीआचाराङ्गसूत्र २/१/७/३६८ (मजैवि., मधु.)]

इसी प्रकार श्रीनिशीथसूत्र में भी इसी विषय से सम्बद्ध पाठ है, वहाँ भी 'पत्तभंगेण वा' पाठ नहीं है ।

['जे भिक्खू अच्चुसिणं असणं वा... तालियंटेण वा पत्तेण वा साहाए वा साहाभंगेण वा....'

– श्रीनिशीथसूत्र १७/१३२ (ते.)]

पा. १ तथा को. २ - इन प्रतियों के मूल लेखन में 'पत्तभंगेण वा' पाठ नहीं है, बाद में किसी के द्वारा यह पाठ जोड़ा गया है ।

ऐसे स्थलों पर यह विमर्शनीय है कि यदि कोई पाठ सभी सूत्र-प्रतियों में प्राप्त हो किन्तु चूर्णि, टीका आदि व्याख्याग्रन्थों में अव्याख्यात हो तो पाठनिर्णय के लिए सूत्रप्रतियों को प्रधानता देनी चाहिए या व्याख्याग्रन्थों को । ऐसे प्रसङ्ग पर अनेक दृष्टियों से व्याख्याग्रन्थों को महत्त्व देना औचित्यपूर्ण लगता है । श्रीदशवैकालिकसूत्र सम्बन्धी सूत्रप्रतियों में से प्राप्त जानकारी के अनुसार 'पा. १' संज्ञक प्राचीनतम सूत्रप्रति विक्रमसंवत् १२२० (तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध) में लिखी गई है जबकि हारिभद्रीय टीका का काल प्रायः आठवीं शताब्दी, वृद्धविवरण का काल आठवीं सदीं का माना जाता है एवं अगस्त्यसिंह स्थविर कृत चूर्णि का समय तीसरी या छठी शताब्दी का माना जाता है । अतः सूत्रप्रतियों की अपेक्षा व्याख्याग्रन्थों को प्रधानता देना पर्याप्त समुपयुक्त है ।

तदनुसार यहाँ 'पत्तभंगेण वा' पाठ को मूलवाचना में नहीं लिया गया है ।

(५) व्याख्याग्रन्थों एवं सूत्रप्रतियों की असंवादिता के इस प्रसंग पर कुछ ऐसी गाथाओं पर भी विचार कर लेना आवश्यक है जो अधिकांश सूत्रप्रतियों में उपलब्ध हैं लेकिन दोनों चूर्णियों एवं टीका आदि में व्याख्यात नहीं है । व्याख्याग्रंथों में व्याख्यात नहीं होने का तात्पर्य स्पष्ट है कि उन व्याख्याकारों के समक्ष रही सूत्रप्रति में यह पाठ नहीं था । कालक्रम से वह सूत्रप्रति या उसके अनुसार उतारी गई प्रतिलिपिरूप सूत्रप्रति अनुपलब्ध हो गई, अतः वर्तमान में प्राप्त सूत्रप्रतियों में व्याख्याकारों के समक्ष रहे पाठ से भिन्न पाठ उपलब्ध है, लेकिन व्याख्याओं से उस समय के पाठ का स्पष्ट संकेत मिलता है ।

यथा - अध्ययन ६ में प्रचलित ८वीं गाथा (६/८) 'वयछक्कं कायछक्कं....' को सभी प्राचीन व्याख्याकारों ने निर्युक्तिकार द्वारा कृत माना है ।

['' तेसिं विवरणत्थमिमा निज्जुत्ती -
वयछक्कं कायछक्कं अकप्पो गिहिभायणं ।
पलियंको गिहिणिसेज्जा य सिणाणं सोहवज्जणं ॥''

– अगस्त्यचूर्णि, पृष्ठ १४४]

['' कयराणि पुण अट्ठारस ठाणाइं ? एत्थ इमाए सुत्तफासियनिज्जुत्तीए भण्णइ - 'वयछक्कं कायछक्कं, अकप्पो० ' ॥''

– वृद्धविवरण, पत्रांक २१६]

['' कानि पुनस्तानि स्थानानीत्याह निर्युक्तिकारः - वयछक्कं कायछक्कं, अकप्पो गिहिभायणं । पलियंकनिसेज्जा य, सिणाणं सोहवज्जणं ॥ २६७॥''

– हारिभद्रीय वृत्ति, पत्रांक १९६ अ(३/१५६)]

व्याख्याकारों के उपर्युक्त कथनों के अनुसार यह स्पष्ट है कि ''वयछक्कं कायछक्कं....'' यह श्रीदशवैकालिकसूत्र की मूलगाथा नहीं है, अपितु यह संग्रह गाथारूप है जो निर्युक्तिकार द्वारा बनाई गई है । अतः उसे

मूल शास्त्र में स्थान देना कथमपि उपयुक्त नहीं है । मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने इस गाथा को मूल में नहीं रखा है ।

अध्ययन ९ के उद्देशक २ में प्रचलित २०वीं गाथा (९/२/२०) 'आलवंते लवंते वा...' की व्याख्या दोनों चूर्णियों, हारिभद्रीय टीका, सुमतिसाधुकृत टीका एवं तिलकाचार्यकृत टीका में नहीं है । खं. २, पा. ३, आ. १, हि. १, भा. - इन प्रतियों में भी यह गाथा अनुपलब्ध है, अतः यह गाथा भी मूल शास्त्र की नहीं है । इस गाथा को भी मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने मूल में नहीं रखा है ।

इसके अतिरिक्त चतुर्थ अध्ययन में प्रचलित २८वीं गाथा (४/२८) 'पच्छा वि ते पयाया खिप्पं....', अध्ययन ८में प्रचलित ३५वीं गाथा (८/३५) 'बलं थामं च पेहाए....' तथा प्रथम चूलिका में प्रचलित सातवीं गाथा (चू १/१) 'जया य कुकुडुंबस्स' की व्याख्या भी दोनों चूर्णिकारों ने एवं आचार्य हरिभद्र, सुमतिसाधु ने नहीं की है । मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने इन गाथाओं में मूल शास्त्र की गाथाओं का क्रमाङ्क नहीं लगाया है एवं इन्हें कोष्ठक में दिया है । वे इन सभी गाथाओं को मूल आगमपाठ में नहीं मानते हैं । कोष्ठक में दिए जाने से याद करने वालों को अस्पष्टता होती है कि इन्हें याद करना है या नहीं । अतः इन गाथाओं को मूल आगमवाचना में नहीं लिया गया है ।

(६) सप्तम अध्ययन की ३८वीं गाथा (७/३८) 'तहा नईओ पुण्णाओ...' में 'कायतिज्ज त्ति नो वए' ऐसा पाठ प्रचलित है ।

श्रीअगस्त्यसिंह स्थविरकृत चूर्णि में 'कायपेज्ज' पाठ है । वृद्धविवरण ने भी 'कायपेज्ज' को पाठान्तर के रूप में स्वीकार किया है ।

['' तडत्थितेहिं काकेहिं पिज्जंति 'काकपेज्जा' तहा नो वदे । ... तडत्थेहिं हत्थेहिं पेज्जा 'पाणिपेज्जा' । काकपेज्जापाणिपेज्जाण विसेसो तत्थ काकपेज्जाओ सुभरिताओ, बाहाहिं दूरं पाविज्जंति त्ति पाणिपेज्जा किंचिदूणा ।''

– अगस्त्यचूर्णी, पृष्ठ १७४]

['' अण्णे पुण एवं पढंति, जहा - 'कायपेज्ज त्ति नो वदे' काया

तडत्था पिबंतीति कायपेज्जा ।'' – वृद्धविवरण, पत्रांक २५८]

उपलब्ध प्राचीनतम सूत्रप्रति पा.१ में भी 'कायपेज्ज' पाठ ही विद्यमान है ।

'काकपेया' - यह नदी के लिए प्राचीन काल में प्रयुक्त होने वाला विशेषण है जिसका प्रयोग उस समय किया जाता है जब नदी इतनी लबालब पानी से भरी है कि काक (कौआ) भी तट पर बैठकर आराम से पानी पी सके । यदि नदी का जलस्तर थोड़ा नीचा हो तो उसे 'पाणिपेया' नदी कहा जाता था अर्थात् इतने जलस्तर वाली नदी जिससे हाथों (पाणि) को झुकाकर अंजलि से लेकर पानी पीया जा सके ।

आवश्यकचूर्णि में आगत एक उद्धरण में भी जल से पूर्ण नदी के लिए 'काकपेया' विशेषण का प्रयोग किया गया है –

['पुण्णा नदी दीसति **कायपेज्जा** सव्वं पिया भंडग तुज्झ हत्थे
– श्रीआवश्यकचूर्णि, पूर्वभाग, पत्र ४६४]

यही उद्धरण आवश्यक-हारिभद्रीय वृत्ति (पत्र ३५१) में भी आया हुआ है, जिसमें 'कागपेज्जा' शब्द प्रयुक्त है ।

पाणिनि कृत अष्टाध्यायी में 'कृत्यैरधिकार्यवचने' (२/१/३३) यह सूत्र आया है, जिस पर व्याख्या करते हुए भट्टोजिदीक्षित कृत 'सिद्धान्तकौमुदी' में कहा है – 'स्तुतिनिन्दाफलकमर्थवादवचनमधिकार्यवचनम्' । इसी प्रसङ्ग पर 'काकपेया नदी' इस प्रयोग को उन्होंने उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।

बौद्ध दर्शन के दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय आदि अनेक ग्रन्थों में भी 'जल से पूर्ण नदी' के लिए 'काकपेया' विशेषणप्रयोग किया गया है ।

उपर्युक्त उल्लेख श्रीअगस्त्यसिंहचूर्णि में आए 'कायपेज्ज' पाठ की शुद्धता को प्रमाणित करते हैं । अतः उपर्युक्त स्थल पर 'तहा नईओ पुण्णाओ, कायपेज्ज त्ति नो वए' ऐसा पाठ स्वीकार किया गया है जिसका अर्थ है 'नदी को जल से पूर्ण जानकर ऐसा न कहे कि यह 'काकपेया' है।

(७) छठे अध्ययन की ६९ वीं गाथा (६/६९) 'सओवसंता अममा अकिंचणा...' में 'सिद्धिं विमाणाइं उवेंति ताइणो' पाठ प्रचलित है ।

श्रीअगस्त्यचूर्णि में 'उवेंति' - पाठ के स्थान पर 'व जंति' पाठ माना है तथा स्पष्ट रूप से विकल्पार्थक 'व' की व्याख्या प्रस्तुत की है ।

[''अट्ठविधकम्ममलुम्मुक्का सिद्धिं परिणेव्वाणं गच्छंति, विमलभूतप्राया विमाणाणि उक्कोसेण अणुत्तरादीणि । एवं सिद्धिं वा विमाणाणि वा । 'वा' सद्दस्स रहस्सता पागते ।'' – श्रीअगस्त्यचूर्णि, पृष्ठ १५८]

'व जंति' कहने से यह अर्थ प्रकट होता है कि 'सिद्धिगति में जाते हैं अथवा वैमानिक देवलोकों में जाते हैं' । इस प्रकार की शैली आगमों में अन्यत्र भी अनेक स्थलों पर देखी जाती है यथा :-

[सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिड्ढिए'
– श्रीउत्तराध्ययनसूत्र १/४८ (मजैवि., स्वा.)
– श्रीदशवैकालिकसूत्र ९/४/अन्तिम गाथा (मजैवि. स्वा.)]

[सव्वदुक्खप्पहीणे वा, देवे वावि महिड्ढिए'
– श्रीउत्तराध्ययनसूत्र ५/२५ (मजैवि., स्वा.)]

['तं सद्दहाणा य जणा अणाऊ, इंदा व देवाहिव आगमिस्संति'
– सूत्रकृताङ्गसूत्र ६/२९ (मजैवि., स्वा.)]

['के इत्थ देवलोएसु, केइ सिज्झंति नीरया'
– श्रीदशवैकालिकसूत्र ३/१५ (मजैवि., स्वा.)]

इत्यादि ।

खं. २, जे, पा. २ - इन प्रतियों में भी 'उवेंति' पाठ नहीं है तथा उपर्युक्त विकल्पात्मक अर्थ को पुष्ट करने वाले 'व' शब्द से युक्त पाठ प्राप्त होता है । अतः 'व जंति' पाठ को ही स्वीकार किया गया है ।

(८) छठे अध्ययन की ६६वीं गाथा (६/६६) 'विभूसावत्तियं भिक्खू ...' में 'संसारसायरे घोरे जेणं पडइ दुरुत्तरे' पाठ प्रचलित है । यहाँ दोनों चूर्णियों में 'पडइ' के स्थान पर 'भमति' पाठ है ।

['णेणं भमति दुस्तरे, सागर इव सागरो, संसार एव सागरो
संसारसागरो, घोरो भयाणगो, तम्मि जेण कम्मुणा सुचिरं भमति'
– अगस्त्यचूर्णि पृष्ठ १५७]

[तं कम्मं बंधइ जेण कम्मेण बद्धेण संसारसागरे भमति'

– वृद्धविवरण, पत्र २३२]

जे एवं को. १ प्रति में भी 'भम' धातु वाला ही पाठ है ।

अन्य आगमों की शैली भी इस प्रकार के प्रकरण में 'पतन' के स्थान पर 'भ्रमण' को ही पुष्ट करती है ।

[मा भमिहिसि भयावत्ते घोरे संसारसागरे'

– श्रीउत्तराध्ययनसूत्र २५/३अ (मजैवि.) २५/४० (स्वा.)]

['भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई'

– श्रीउत्तराध्ययनसूत्र २५/३९ (मजैवि.) २५/४१ (स्वा.)]

['जमादिदित्ता बहवो मणूसा, भमंति संसारमणोवतग्गं'

– श्रीसूत्रकृतांगसूत्र १/१२/६ (मजैवि., मधु.)]

श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्र १/१/३/१६ (मजैवि., मधु.), श्रीप्रश्नव्याकरण १/३७ (मधु.) इत्यादि में भी 'भम' धातु के ऐसे प्रकरण में प्रयोग प्राप्त होते हैं।

'भम' धातु के अतिरिक्त भी 'भम' धातु के अर्थ को पुष्टि करने वाले अनेक सूत्रप्रमाण आगम में उपलब्ध हैं । श्रीभगवतीसूत्र में 'अणाइयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टइ' (१/१/११-मजैवि.) इस प्रकार का पाठ बहुशः प्राप्त होता है जिसमें चातुरन्त संसारकान्तार में पुनः पुनः अटन अर्थात् भ्रमण की बात कही है ।

अतः यहाँ 'भमति' पाठ को समादृत किया गया है ।

(७) द्वितीय अध्ययन की नवीं गाथा (२/९) 'जइ तं काहिसि भावं...' में '.... हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि' यह पाठ प्रचलित है । यहाँ दोनों चूर्णिकारों ने 'हढो' पाठ का उल्लेख किया है ।

['तो वाताइद्धो व हढो अट्ठिअप्पा भविस्ससि, जलरुहो वणस्सति-विसेसो अणाबद्धमूलो हढो' – अगस्त्यचूर्णि पृ. ४६]

['वायाइद्धो विव हढो अट्ठिअप्पा भविस्ससि, हढो णाम वणस्सइविसेसो सो दहतलागादिषु छिण्णमूलो भवति' – वृद्धविवरण पत्र ८९]

श्रीउत्तराध्ययनसूत्र में रथनेमि-राजमती संबन्धी ऐसे ही प्रसङ्ग में भी

पाठान्तर से रहित 'हढ' पाठ ही उल्लिखित है ।

['..... हढो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि' – श्रीउत्तराध्ययनसूत्र २२/४४ (मजैवि.) २२/४५ (स्वा.)]

वनस्पतिवर्णन प्रकरण में भी श्रीभगवतीसूत्र एवं श्रीप्रज्ञापनासूत्र में 'हढ' वनस्पति का उल्लेख हुआ है ।

['णंगलइ-पयुय-किण्हा-पउल-हढ-हरेवुया-लोहीणं एएसिं णं जे जीवा मूलत्ताए' श्रीभगवतीसूत्र २३/२ (ते.)]

['जलरुहा अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा - उदए अवए पणए सेवाले कलंबुया हढे कसेरुया – श्रीप्रज्ञापनासूत्र १/५१ (मजैवि. मधु.)]

['किण्हे पउले य हढे हरतणुया चेव लोयाणी'

– श्रीप्रज्ञापनासूत्र १/५४/५२ (मजैवि. मधु.)]

श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्र में भी 'हढ' वनस्पति का उल्लेख मिलता है -

['पणगत्ताए सेवालत्ताए कलंबुगत्ताए हढत्ताए कसेरुयत्ताए'

– श्रीसूत्रकृताङ्गसूत्र २/३/७३० (मजैवि. मधु.)]

श्रीमद् उत्तराध्ययनसूत्र की शान्त्याचार्यकृत बृहद्वृत्ति तथा श्रीतिलकाचार्य-कृत दशवैकालिकवृत्ति से भी 'हढ' पाठ पुष्ट होता है ।

[''वातेनाविद्धः - समन्तात्ताडितो वाताविद्धो भ्रमित इति यावत् हठो वनस्पतिविशेषः'' – श्रीउत्तराध्ययनसूत्र, शान्त्याचार्यकृत बृहद्वृत्ति अध्ययन २२ गाथा ४४ की टीका, पत्रांक ४९५ अ]

[''वाताविद्धः इव हठः'' – तिलकाचार्यटीका, पृष्ठ २९८]

'हठ' का प्राकृत में 'हढ' बनता है ।

[''ठो ढः'' - श्रीसिद्धहैमशब्दानुशासन ८/१/१९९]

अतः यहाँ उपर्युक्त प्रमाणों के आधार से ''हढो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि'' पाठ स्वीकार किया गया है ।

(१०) पञ्चम अध्ययन के प्रथम उद्देशक की अठारहवीं गाथा (५/१/१८) 'साणीपावारपिहियं....' में 'अप्पणा नावपंगुरे' पाठ प्रचलित है ।

इस सम्पूर्ण शास्त्र में एकमात्र इसी स्थान पर पाठनिर्णय मात्र बाह्य प्रमाणों के आधार पर किया गया । बाह्य प्रमाण इतने अधिक सशक्त है कि श्रीदशवैकालिकसूत्र संबंधी किसी स्थल पर अनुपलब्ध पाठ का ही निर्णय आवश्यक हो गया । यहाँ भिक्षा हेतु गए हुए भिक्षु द्वारा द्वारादि खोलने सम्बन्धी प्रसङ्ग है एवं द्वार खोलने के अर्थ में 'अवपंगुर' धातु का प्रयोग बताया है। दोनों चूर्णियों में यहाँ 'अवंगुर' धातु का पाठ है, किन्तु ये दोनों धातुएँ प्राकृत, अर्धमागधी आदि भाषाओं में नहीं होती । श्रीआचाराङ्गसूत्र में इसी प्रकार के प्रकरण में 'अवंगुण' धातु का प्रयोग है –

['से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावतिकुलस्स दुवारवाहं... पडिपिहितं पेहाए... णो अवंगुणत्ता'

– श्रीआचाराङ्गसूत्र २/१/६/३५६ (मजैवि. मधु.)]

श्रीआचाराङ्गसूत्रगत इस प्रकरण के अतिरिक्त भी आगमों में अनेक स्थानों पर द्वार खोलने के अर्थ में 'अवंगुण' धातु का प्रयोग आगमकारों ने किया है । यथा –

['सागरए दारए... उट्ठेत्ता... वासघरदुवारं अवंगुणेइ अवंगुणेत्ता मारामुक्के विव काए' – श्रीज्ञाताधर्मकथाङ्ग १/१६/६५ (ते.), १/१६/५३ (मधु.)]

[से भिक्खू वा भिक्खूणी वा उच्चारपासवणेण उब्बाहिज्जमाणे रातो वा वियाले वा गाहावतिकुलस्स दुवारबाहं अवंगुणेज्जा'

– श्रीआचाराङ्गसूत्र २/२/३०/४३० (मजैवि. मधु.)]

['हालाहलाए कुंभकारीए कुंभकारावणस्स दुवारवयणाइं अवंगुणंति'

– श्रीभगवतीसूत्र १५/११० (मजैवि. मधु.)]

उपर्युक्त आगमिक उद्धरणों के साथ ही व्याख्याग्रंथों एवं प्राकृतसाहित्य में भी 'अवंगुण' धातु का द्वार खोलने या खोलने के अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

['वलवाएँ अवंगुणणं, कज्जस्स य छेदणं भणियं'

– बृहत्कल्पभाष्य गाथा २२८३]

['सुंदरि! दुवारमवंगुणाहि' – जुगाइजिणंदचरियं पृष्ठ ९४ पंक्ति १०]

विशेष रूप से यह ध्यातव्य है कि कहीं भी अवंगुरे अथवा अपंगुरे का प्रयोग न सिर्फ द्वार खोलने के अर्थ में अपितु किसी भी अर्थ में आगमों

या प्राकृत साहित्य में हुआ है, इसका कोई प्रस्तुत सूत्रेतर उल्लेख ज्ञात नहीं है । देशज शब्दों में प्रस्तुत से भिन्न कोई भी उल्लेख उपर्युक्त शब्दों अथवा तत्संबंधी धातु के प्रयोगों का नहीं मिलता है ।

प्राचीन लिपि में 'रे' तथा 'णे' में हुई भ्रान्तिवश अवंगुणे को अवंगुरे पढ़ा जाने लगा हो, ऐसा निश्चितता पूर्वक मानने के उपर्युक्त पर्याप्त आधार है । अतः उपर्युक्त स्थल में 'न अवंगुणे' पाठ को ही श्रीआचाराङ्गसूत्र आदि के आधार से शुद्ध पाठ माना गया है ।

(११) अष्टम अध्ययन की पैंतालीसवीं गाथा (८/४५) 'न पक्खओ न पुरओ...' में 'न य ऊरुं समासेज्जा, चिट्ठेज्जा गुरुणंतिए' पाठ प्रचलित है।

यहाँ श्रीअगस्त्यसिंह स्थविर ने चूर्णि में व्याख्या करते हुए कहा है कि – 'ऊरुगमूरुगेण संघट्टेऊण एवमवि न चिट्ठे'

– अगस्त्यचूर्णि पृष्ठ १९६

इसका तात्पर्य यह है कि ऊरु का ऊरु में संघट्ट (स्पर्श) करके, इस प्रकार भी न खड़ा रहे (न बैठे) ।

यही अर्थ श्रीउत्तराध्ययनसूत्र के प्रथम अध्ययन की अठारहवीं (१/१८) गाथा 'न पक्खओ न पुरओ...' में आगत 'न जुंजे ऊरुणा ऊरुं' से अभिव्यक्त होता है कि गुरु के ऊरु से अपने ऊरु का स्पर्श न करे । श्री दशवैकालिक सूत्र की इस गाथा (८/४५) एवं श्रीउत्तराध्ययनसूत्र की इस गाथा (१/१८) के पूर्वार्ध में पूर्ण समानता है [न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ] । 'ऊरु का ऊरु से स्पर्श करके न रहे', यह अर्थ समासेज्जा पाठ से अभिव्यक्त नहीं होता, बल्कि 'समासज्ज' पाठ से होता है जो पा. २ प्रति में है । पा. १ प्रति से भी 'समासज्ज' पाठ की प्रतीति होती है । मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने भी अगस्त्यचूर्णिगत व्याख्या के आधार से चूर्णिसम्मत मूलपाठ में 'समासज्ज' पाठ को ही स्वीकार किया है । श्रीउत्तराध्ययनसूत्र की चूर्णि में भी गोपालगणिमहत्तरशिष्य ने ऊरु को उरु से संघट्टा करके बैठने का निषेध किया है ।

['ऊरुगमूरुगेण संघट्टेऊण एवमवि न चिट्ठेज्जा'

– श्रीउत्तराध्ययनचूर्णि, पृष्ठ ३५]

साथ ही इसी सूत्र के बृहद्वृत्तिकार शान्तिसूरि ने भी इसी आशय का अर्थ किया है। यह अर्थ 'समासज्ज' पाठ मानने पर ही घटित होता है।

['न युज्याद् - न सङ्घट्टयेद् अत्यासन्नोपवेशदिभिः, 'ऊरुणा' आत्मीयेन 'उरुं' कृत्य - संबन्धिनं, तथाकरणेऽत्यन्ताविनयसम्भवात्'

– श्रीउत्तराध्ययनसूत्र बृहद्वृत्ति, (१/१२)]

इस विषय में वृद्धविवरणकार एवं टीकाकार ने कुछ भिन्न अर्थ किया है कि 'ऊरु पर ऊरु रखकर गुरु के समीप नहीं बैठे' । किन्तु यह अर्थ प्रकरणसंगत नहीं है, बल्कि श्रीअगस्त्यचूर्णिकार द्वारा किया गया अर्थ ही अन्य आगमों में प्रस्तुत अर्थ से संगत बनता है ।

साथ ही यहाँ 'समासज्ज' पद मानने पर ही 'क्त्वा-अर्थक' सम्बन्धार्थ-कृदन्त की उपस्थिति हो पाती है जिससे गाथा का वैयाकरणिक पक्ष भी समीचीन रहता है । 'समाजसेज्जा' पाठ मानने पर यह सम्बन्धार्थकृदन्त न बनकर क्रियापद बनता है जिससे गाथा का शब्दात्मक प्रवाह भी भंग होता है ।

अतः अर्थसङ्गति इत्यादि की अपेक्षा 'न य ऊरुं समासज्ज' पाठ की ही स्वीकार किया गया है, जिसका अर्थ है कि 'गुरु के ऊरु से अपना ऊरु सटाकर न बैठे' ।

(१२) पाठों के निर्णय में कभी-कभी व्याकरण एवं छन्दःशास्त्र का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त होता है । यद्यपि प्राकृतव्याकरण में अपवादों की बहुलता है तथा अनेक शब्दों की वैयाकरणिक सिद्धि संभव नहीं हो पाती है और आचार्य श्रीहेमचन्द्र ने भी 'बहुलम्' (८/१/२), 'आर्षम्' (८/१/३) जैसे सूत्रों का निर्माण करके उपर्युक्त तथ्य को बल दिया है । तथापि इतने मात्र से ऐसा नहीं कहा जा सकता कि किसी भी प्रकार का वाक्यप्रयोग हो, वह व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध नहीं ठहराया जा सकता । यही बात छन्दःशास्त्र के सन्दर्भ में भी समझनी चाहिए कि सभी गाथाओं में छन्द सम्बन्धी उपलब्ध नियमों की सङ्गति बिठाई जा सके यह शक्य नहीं है । तथापि जहाँ छन्दसम्बन्धी स्पष्टता है, वहाँ उसका आश्रय लेकर उपलब्ध भिन्न-भिन्न पाठों में से किसी एक पाठ का निर्णय करना अनौचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। व्याकरण एवं छन्द के प्रमुख या गौण आधार से जो पाठनिर्णय किए गए

हैं उनमें से कुछ का उल्लेख संक्षिप्त रूप से किया जा रहा है।

(i) ५/१/६७ में 'दावए' पाठ प्रचलित है (समणट्ठाए व दावए) जिसका अर्थ बनता है 'दापयेत्' - दिलवाए - ('दा धातु का णिजन्त प्रयोग) लेकिन यहाँ 'देने' का अर्थ अभीष्ट है 'दिलवाने' का नहीं । अतः अगस्त्यचूर्णि, वृद्धविवरण तथा हारिभद्रीय वृत्ति में समागत 'दायक' 'देने वाला' इस अर्थ से युक्त 'दायगे' पाठ स्वीकृत हुआ है ।

(ii) ९/१/४ में 'जे यावि नागं डहरं ति नच्चा' पाठ प्रचलित है, जिसका अर्थ है कि 'जो साँप को 'छोटा है' इस प्रकार जानकर.... ।' यहाँ 'डहरं ति' के स्थान पर प्रतियों में 'डहरे त्ति' पाठ भी प्राप्त होता है, जो कि व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध है। ऐसे प्रसंग पर 'त्ति' (इति) से पूर्व प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होना चाहिए ।

ऐसा ही ७/४८ में 'साहुं साहुं ति आलवे' इस प्रचलित पाठ के सन्दर्भ में है । यहाँ भी प्रतियों में प्राप्त 'साहुं साहु त्ति आलवे' पाठ शुद्ध है ।

(iii) दूसरी चूलिका की दसवीं गाथा (चू. २/१०) में 'चरेज्ज कामेसु असज्जमाणो' पाठ है । अन्यत्र 'चरेज्ज' के स्थान पर 'विहरेज्ज' पाठ है । चूर्णि में इस गाथा का इन्द्रवज्रा छन्द में निबद्ध होने का स्पष्ट उल्लेख है, अतः यहाँ छन्दःसंगति के अनुसार 'चरेज्ज' पाठ स्वीकार किया गया है ।

(१३) पञ्चम अध्ययन के दूसरे उद्देशक की सातवीं गाथा (५/२/७) 'तहेवुच्चावया पाणा भत्तट्ठाए समागया....' में 'तउज्जुयं न गच्छिज्जा' पाठ प्रचलित है ।

आचार्य हरिभद्र ने यहाँ 'तउज्जुयं' की संस्कृत छाया 'तदृजुकं' मानकर इस प्रकार अर्थ किया है 'तदृजुकं - तेषामभिमुखं न गच्छेत्' अर्थात् भिक्षु भोजन के लिए उपस्थित (आहार करते हुए) उन प्राणियों के अभिमुख न जाए ।

चूर्णिकार ने यहाँ 'तो उज्जुयं' पाठ माना है, जिसका ऐसा भाव प्रकट होता है कि - 'भोजन के लिए प्राणी उपस्थित हो तो ऋजु यानी सीधे मार्ग से न जाए अर्थात् अन्य मार्ग से जाए ।'

टीकाकार के अनुसार 'ऋजु' जीवों के ऋजु (अभिमुख) से जुड़ा

है जबकि चूर्णिकार के अनुसार 'ऋजु' मार्ग का विशेषण है, ऋजु यानी सीधे मार्ग से न जाए । चूर्णिकार के द्वारा मान्य इस पाठ के अर्थ की पुष्टि इसी प्रकरण से संबंधित श्रीआचाराङ्गसूत्र के इस पाठ से होती है ।

['से भिक्खू वा भिक्खुणी वा जाव समाणे से ज्जं पुण जाणेज्जा, रसेसिणो बहवे पाणा घासेसणाए संथडे संणिततिए पेहाए, तं जहा कुक्कुडजातियं, वा सूयरजातियं वा, अग्गपिडंसि वा वायसा संथडा संणिवतिया पेहाए, सति परक्कमे संजया णो उज्जुयं गच्छेज्जा'

— श्रीआचाराङ्गसूत्र २/१/६ (३५९) (मजैवि. मधु.)]

अर्थ : वह भिक्षु या भिक्षुणी आहार के निमित्त जा रहे हों, उस समय मार्ग में यह जाने कि रसान्वेषी बहुत से प्राणी आहार के लिए झुण्ड के झुण्ड एकत्रित होकर (किसी पदार्थ पर) टूट पड़े हैं, जैसे कि - कुक्कुट जाति के जीव, शूकर जाति के जीव अथवा अग्रपिण्ड पर कौएं झुण्ड के झुण्ड टूट पड़े है; इन जीवों को मार्ग में आगे देखकर संयत साधु या साध्वी अन्य मार्ग के रहते उस सीधे मार्ग से न जाएं ।

श्रीआचाराङ्गसूत्र के एक अन्य सूत्रपाठ में भी यही अर्थ प्रकट होता है । जिसकी टीका में बताया हैं कि

'सत्यन्यस्मिन् संक्रमे तेन ऋजुना यथा न गच्छेत्' (अर्थात् अन्यमार्ग के होने पर उस सीधे मार्ग से न जावे । - श्रीआचाराङ्गसूत्र शीलाङ्काचार्यकृत वृत्ति)

अतः उपर्युक्त प्रमाणों के आधार से यहाँ 'तो उज्जुयं न गच्छेज्जा' पाठ स्वीकारा गया है ।

उपसंहार :

ऊपर कुछेक दृष्टान्तों के माध्यम से यह व्यक्त हुआ कि किसी भी स्थल पर चूर्णि, टीका, सूत्रप्रतियों में प्राप्त होने वाले विभिन्न पाठों, पाठान्तरों में से सम्यक् पाठ का निर्णय किन विभिन्न बिन्दुओं पर अवलम्बित रहता है। शुद्धपाठ का निर्णय एक दुष्कर कार्य है जो पर्याप्त समय, साधन, प्रज्ञा, शोध, ज्ञान एवं अनुभव की नितान्त अपेक्षा रखता है । कार्यारम्भ के पूर्व 'सरल सा'

एवं 'थोड़े समय में निष्पन्न होने जैसा' प्रतीत होने वाला यह कार्य कार्यारम्भ के बाद एक के बाद एक गुत्थियों को सुलझाने हेतु विस्तार पाता गया । मात्र अद्यावधि प्रकाशित आगमों [यथा - आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (युवाचार्य श्रीमधुकरमुनिजी म.सा.), तेरहपन्थियों द्वारा लाडनूँ से प्रकाशित, घासीलालजी म.सा. द्वारा सम्पादित, विभिन्न स्वाध्यायमाला इत्यादि] के पाठों को परस्पर मिलाकर जहाँ अन्तर आता, वहाँ सही का निर्णय होकर शीघ्र ही कार्य सम्पूर्ण हो जाता, ऐसा नहीं था । चूर्णियों, टीकाओं, उनकी हस्तलिखित प्रतियों, हस्तलिखित प्राचीन सूत्रप्रतियों के बिना तथा अनेक विषयों का सम्यक् विचार किए बिना यह कार्य सम्यक्तया निष्पादित होना कठिन है यह समय एवं अनुभव के साथ स्पष्टतर होता गया। अनेक बार किसी एक छोटे से पाठ का निर्णय करने हेतु कितने ही व्याख्याग्रन्थों, कोशों, व्याकरणग्रन्थों, प्राचीन प्रतियों, अन्य आगमों, अन्य ग्रन्थों आदि को टटोलने में घण्टों निकल जाते तब कहीं जाकर ऐसे साधक-बाधक प्रमाण उपलब्ध होते, जिनसे निष्कर्ष प्राप्त हो सके एवं चित्त संतुष्ट हो सके। जब तक चित्त समाहित एवं स्थिर नहीं हो जाता कि यही शुद्ध होना चाहिए, तब तक संतुष्टि प्रकट नहीं होती थी एवं कार्यप्रवाह आगे गतिशील नहीं हो पाता था।

यद्यपि हमारे पास अपेक्षित समय, साधन, प्रज्ञा, ज्ञान एवं तद्विषयक अनुभव की अल्पता है तथापि जैसा क्षयोपशम है, वैसा कुछ कार्य बन पाया है। जैसे-जैसे अनुभवप्रकाश वृद्धिगत होता गया, पूर्वकृत निर्णयों पर पुनः पुनः विचार भी होता गया, अतः समय को सीमा के अतिक्रमण से रोका नहीं जा सका। आगम के सूत्रपाठ शुद्ध निर्णीत हो एवं जिनेश्वरों द्वारा उपदिष्ट वास्तविक अर्थ उन शब्दों से प्रकट हो सके, यही प्रमुख लक्ष्य था एवं है। आगमप्रभाकर मुनि श्रीपुण्यविजयजी इत्यादि द्वारा इस दिशा में किये गये कार्य का काफी साहाय्य हमें प्राप्त था। अन्यथा यह कार्य कहीं और ज्यादा दुष्कर होता, तथापि अनेक स्थलों पर परिश्रम नितान्त अपेक्षित था। मुनि श्रीपुण्यविजयजी के कुछ शब्द यहाँ माननीय है —

''भविष्यना विद्वान् संपादकोने विनम्र भावे प्रार्थना करीअे छीअे के प्रस्तुत सम्पादनमां उपयुक्त प्रतिओ सिवायनी कोई महत्त्वनी प्रति के प्रतिओ

क्यांयथी प्राप्त थाय तो तेने मेलवीने तेम ज अहीं उपयुक्त प्रतिओना पाठ-पाठान्तरो अने टिप्पणीओने ते ते रीते बराबर समजी-तपासीने ज पुनर्मुद्रण करे। आम करवाथी प्रस्तुत सम्पादनमां कोईक स्थले जे क्षति रही हशे ते दूर थशे।''

किसी अन्य स्थान पर उन्हीं के ये शब्द थे - ''अमारुं सम्पादन पूर्ण छे, अेम कहेवानी अमे हिम्मत नथी करता।'' इसी प्रकार यथाशक्ति शुद्धतम पाठ का निर्णय करने के लक्ष्य के बावजूद हमें भी यह कहते हुए संकोच नहीं है कि हमारे अल्प क्षयोपशम, साधन एवं अनुभव के आधार पर किए गए पाठनिर्णयों पर भी कदाचित् त्रुटि की छाया पडना असंभाव्य नहीं है।

यहाँ विस्तारनिवारण हेतु कुछेक पाठनिर्णयदृष्टान्तों को ही उल्लिखित किया जा सका है। सभी निर्णयों को प्रस्तुत करना प्रायोगिक रूप से एक अति कठिन कार्य था। तथापि इस संक्षिप्त प्रस्तुति से भी आप प्रज्ञाशील जनों के लिए निर्णयपद्धति को समझना कठिन नहीं होगा। इस सम्पूर्ण पद्धति में या किसी दृष्टान्तविशेष के विषय में आपके जो भी विचार बनें उन्हें व्यक्त करने में किसी प्रकार का संकोच न करें। संभव है कि भविष्य में प्रत्येक आगम के पाठनिर्णय में इस प्रकार का संप्रेषण न हो पाए। अतः आगमों के पाठनिर्णय के विषय में आपके जो भी विचार एवं अनुभवपूर्ण सुझाव हों उनसे अवश्य अवगत करावें। आपके विचारों से हमारे अनुभव समृद्ध होगें जो वर्तमान के संशोधन में एवं आगे के कार्यलक्ष्य में सहकारी बन सकेगें। आप व हम सभी की यही अन्तर्भावना है कि हम तीर्थङ्कर भगवन्तों एवं गणधर भगवन्तों द्वारा प्रदत्त आगमवाणी की सूत्रात्मक एवं अर्थात्मक मौलिकता को जान सकें, उसकी सम्यक् सुरक्षा कर सकें एवं परस्पर स्वपर के सिद्धिगमन हेतु इस जिनागम नौका का समाश्रय ग्रहण कर सकें। इसी शुभभावना के साथ यत्किंचित् भी तीर्थङ्कर भगवन्तों की आज्ञा से विपरीत न हो, ऐसे भावों से हृदय सराबोर है।

विशेष ध्यान देने योग्य

यह निबंध फिलहाल आपके विचारों की प्रतीक्षा कर रहा है, अतः इसमें उल्लिखित पाठनिर्णयों के अनुसार स्वाध्याय-परावर्तन-स्मरण आदि में अभी से ही फेरबदल न किया जाए, यह विशेषतः ध्यातव्य है।

—X—

परिशिष्ट - १
श्रीदशवैकालिकसूत्र के पाठनिर्णय में
हमारे द्वारा प्रयुक्त दशवैकालिकसूत्र की हस्तलिखित प्रतियों का विवरण

संज्ञा	भण्डार का नाम	क्रमांक	ताडपत्रीय /कागज	प्रति का लेखन काल
पा. १	पाटण - संघवी पाड़ा का भण्डार	पातासंपा २०१-१	ताड़पत्रीय	वि.सं. १२२०
पा. २	'' '' ''	पातासंपा ३५-१	''	—
पा. ३	'' '' ''	पातासंपा १८२-१	''	वि.सं. १४८३
ला.	अहमदाबाद-लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर	तालाद ३८९	''	वि.सं. १२६५
को. १	कोबा - आचार्य श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञानमन्दिर	२५३८४	कागज	वि.सं. १४८१
को. २	'' '' '' ''	६७६७५	''	वि.सं. १४८९
को. ३	'' '' '' ''	२०६६	''	विक्रम की १६वीं सदी
को. ४	'' '' '' ''	१०६७७	''	विक्रम की १७वीं सदी
को. ५	'' '' '' ''	११६९४	''	विक्रम की १८वीं सदी
भा.	पूना - भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट	भांका २६२	''	वि.सं. १७४५
हि-१	बीकानेर-श्री हितकारिणी संस्था	अ ४०	''	—

संज्ञा	भण्डार का नाम	क्रमांक	ताडपत्रीय /कागज	प्रति का लेखन काल
हि-२	'' ''	५९१	''	वि.सं. १६२४
आ. १	उदयपुर-आगम-अहिंसा समता एवं प्राकृत संस्थान	४९५	''	वि.सं. १५६८
आ. २	'' '' ''	४८३	''	वि.सं. १८६४
आ. ३	'' '' ''	४८७	''	वि.सं. १८७२
से	बीकानेर-श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन ग्रन्थालय	१४७२	कागज	वि.सं. १८१५
रा.	उज्जैन-रामरत्न ग्रन्थालय	—	''	—

इन प्रतियों का मुख्यतः उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त भी अन्य २० से अधिक प्रतियों का भी क्वचित् कदाचित् उपयोग किया गया है।

श्रीदशवैकालिकसूत्र के मूलपाठ हेतु मुनि श्रीपुण्यविजय द्वारा प्रयुक्त हस्तलिखित प्रतियाँ

जे	जैसलमेर-श्रीजिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार	८३ (३)	ताड़पत्रीय	वि.सं. १२८९
खं.-१	खम्भात - श्रीशान्तिनाथ जैन ज्ञानभण्डार	७३	''	१३वीं सदी का पूर्वार्ध
खं.-२	'' '' '' ''	७४	''	१४वीं सदी का पूर्वार्ध
खं.-३	'' '' '' ''	७५	''	''
खं.-४	'' '' '' ''	७६(१)	''	''
शु.	(मुद्रित) प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डॉ. ERNST LEUMANN द्वारा सम्पादित तथा डॉ. WALTHER SCHUBRING कृत अनुवाद सहित दशवैकालिक सूत्र			

श्रीदशवैकालिकसूत्र के व्याख्याग्रन्थों की हमारे द्वारा प्रयुक्त हस्तलिखित प्रतियाँ

संज्ञा	भण्डार का नाम	क्रमांक	ताडपत्रीय /कागज	प्रति का लेखन काल	व्याख्याग्रन्थ
हवृवि-१	पाटण - श्रीहेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानभण्डार	पाकोहेम ६५२८	कागज	वि.सं. १४९४	दशवैकालिक सूत्र पर अज्ञातकर्तृक वृद्धविवरण (चूर्णि)
हवृवि-२	'' '' ''	पाकोहेम ६५४५	''	वि.सं. की १५वीं सदी	''
हवृवि-३	'' '' ''	पाकोहेम १४९२७	''	वि.सं. की १६वीं सदी	''
हहाटी-१	पाटण - संघवी पाड़ा का भण्डार	पातासंपा ८४	ताड़पत्रीय	वि.सं. १३८४	इस प्रति में दशवैकालिक सूत्र ९/१/९ तक की ही हारिभद्रीय टीका है आगे के पत्र अप्राप्त हैं।
हहाटी-२	पाटण - श्री हेमचन्द्राचार्य जैन ज्ञानभण्डार	पाकोहेम १४७९७	कागज	वि.सं. १५७३	हारिभद्रीय टीका
हहाटी-३	पाटण - संघवी पाड़ा का भण्डार	पातासंपा ३५-१	ताड़पत्रीय	वि.सं. १४८९	''

श्री दशवैकालिक सूत्र के व्याख्या ग्रन्थों की हमारे द्वारा प्रयुक्त हस्तलिखित प्रतियाँ					
संज्ञा	**भण्डार का नाम**	**क्रमांक**	**ताडपत्रीय /कागज**	**प्रति का लेखन काल**	**व्याख्याग्रन्थ**
हसुटी-१	पाटण - संघवी पाड़ा का भण्डार	पातासंपा	ताड़पत्रीय	वि.सं. ११८८	दशवैकालिकसूत्र की सुमतिसाधुकृत टीका
हसुटी-२	कोबा-आचार्य श्रीकैलाससागरसूरि ज्ञानभण्डार	२०६६	कागज	वि. की १६वीं सदी	
हसुटी-३	'' '' ''	१०६७७	कागज	वि.की १७वीं सदी	''
हसुटी-४	पूना - भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट	भांका २६२	''	वि.सं. १७४५	''
हतिटी	कोबा - आचार्य श्रीकैलाससागर सूरि ज्ञानभण्डार	६७६७५	कागज	वि.सं. १४८९	दशवैकालिकसूत्र की श्रीतिलकाचार्यकृत टीका
हरटी	'' '' ''	२५८८४	''	वि.सं. १४८१	रत्नशेखरसूरिकृत टीका (हरिभद्रसूरिकृत टीका-संक्षेपरूप विवरणोद्धार)
हबृअ	पूना - भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट	भांका १२२	''	वि.सं. १५१०	अज्ञातकर्तृक, हरिभद्रसूरि कृत बृहद्वृत्ति की अवचूरि

श्री दशवैकालिक सूत्र के व्याख्या ग्रन्थों की हमारे द्वारा प्रयुक्त हस्तलिखित प्रतियाँ					
संज्ञा	**भण्डार का नाम**	**क्रमांक**	**ताडपत्रीय /कागज**	**प्रति का लेखन काल**	**व्याख्याग्रन्थ**
हसअ	पूना - भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट	भांका १४१	''	वि.सं. १५१०	अज्ञातकर्तृक अवचूरि 'अक्षरार्थगमनिका'
हसदी	कोबा - आचार्य श्रीकैलाससागर सूरि ज्ञानमन्दिर	११६९४	''	वि. की १८वीं सदी	उपाध्याय समयसुंदरकृत दीपिका

हस्तलिखित प्रतियों में कई स्थलों पर पहले जो पाठ लिखा रहता है बाद में कोई उस पाठ में संशोधन-परिवर्धन कर देता है, ऐसे प्रसंगो पर उस प्रति के मूल पाठ तथा संशोधित पाठ को दर्शाने के लिए उस उस प्रति की संज्ञा के आगे 'मू.' और 'सं.' इन शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

जैसे - लासं. यानी 'ला' संज्ञक प्रति का संशोधित पाठ इसी प्रकार कोमू. २ यानी 'को.२' संज्ञक प्रति का मूल पाठ (उपर्युक्त उदाहरणों के लिए देखे पृष्ठ क्रमांक १२६)

परिशिष्ट - २
सन्दर्भग्रन्थसूचि

आयारंगसुत्तं, सं. - मुनि जम्बूविजयजी, प्रका. - महावीर जैन विद्यालय, मुम्बई (म.जै.वि.)

सुयगडंगसुत्तं, सं. - मुनि जम्बूविजयजी, प्रका. - म.जै.वि.

ठाणंगसुत्तं, समवायंगसुत्तं च, सं. - मुनि जम्बूविजयजी, प्रका. - म.जै.वि.

वियाहपण्णत्तिसुत्तं (भाग १ से ३), सं. - पं. बेचरदास दोशी, प्रका. - म.जै.वि.

णायाधम्मकहाओ, सं. - मुनि जम्बूविजयजी, प्रका. - म.जै.वि.

पण्णवणासुत्तं (भाग १ व २), सं. - मुनि पुण्यविजयजी आदि, प्रका. - म.जै.वि.

दसवेआलियं उत्तरज्झयणाइं आवस्सयसुत्तं च, सं. - मुनि पुण्यविजयजी आदि, प्रका. - म.जै.वि.

नंदिसुत्तं अणुओगद्दाराइं च, सं. - मुनि पुण्यविजयजी आदि, प्रका. - म.जै.वि.

पइण्णयसुत्ताइं (भाग १ व २), सं. - मुनि पुण्यविजयजी आदि, प्रका. - म.जै.वि.

स्थानांगसूत्रम् (भाग १ से ३), अभयदेव वृत्ति सहित, सं. - मुनि जम्बूविजयजी, प्रका. - म.जै.वि.

दसवेआलियसुत्तं (अगस्त्यचूर्णि सहित), सं. - मुनि पुण्यविजयजी, प्रका. - प्राकृत टेक्स्ट सोसोयाटी, अमदावाद

सुयगडंगसुत्तं (भाग १, चूर्णी सहित), सं. - मुनि पुण्यविजयजी, प्रका. - प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अमदावाद

निशीथसूत्रम् (भाग १ से ४ चूर्णी सहित), सं. - अमरमुनिजी, मुनि कन्हैयालाल 'कमल', प्रका. - सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

अंगसुत्ताणि (भाग - १,२,३), सं. - आचार्य महाप्रज्ञ, प्रका.- जैन विश्व भारती, लाडनूँ (जै.वि.भा.)

उवंगसुत्ताणि (भाग १,२) सं. - आ. महाप्रज्ञ, प्रका. - म.जै.वि.भा.

नवसुत्ताणि, सं. - आ. महाप्रज्ञ, प्रका. - जै.वि.भा.

देशीशब्दकोश, सं. - आ. महाप्रज्ञ, प्रका.- जै.वि.भा.

जैनागम वनस्पति कोश, सं. - आ. महाप्रज्ञ, प्रका. - जै.वि.भा.

दसवेआलियं (मूल, अर्थ, टिप्पण), सं. - आ. महाप्रज्ञ, प्रका. - जै.वि.भा.

आगम शब्द कोश, सं. - आ. महाप्रज्ञ, प्रका. - जै.वि.भा.

दशवैकालिक : एक समीक्षात्मक अध्ययन, सं. - आ. महाप्रज्ञ, प्रका. - जै.वि.भा.

पाइअसद्दमहण्णवो, क. - पं. हरगोविन्ददास, प्रका. - अरिहंतसिद्धसूरि ग्रन्थमाला, पालीताणा

संस्कृत-हिन्दी कोश, क. - वामन शिवराम आप्टे, प्रका. - कमल प्रकाशन

संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, क. - मोनियार विलियम्स, प्रका. - मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली (MLBD)

A Comprehensive and critical dictionary of the Prakrit Language with special reference to Jain Literature, Editor - A. M. Ghathge and R. P. Poddar, Pub. - Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune (BORI).

देशीनाममाला, क. - आचार्य हेमचन्द्र, सं. - R. Pischel, प्रका. BORI

अमरकोश, क. - अमरसिंह, प्रका. - MLBD

अभिधानचिन्तामणि नाममाला, क. - आ. हेमचन्द्र, सं. - मुक्ति-मुनिचन्द्रविजयौ

हलायुध कोश, सं. - जयशंकर जोशी, प्रका. - हिन्दी समिति, लखनऊ

नालन्दा विशाल शब्दसागर, सं. नवलजी, प्रका. - MLBD and आदर्श बुक डिपो, दिल्ली

जैन उद्धरण कोश (भाग-१), सं. - कमलेशकुमार जैन, प्रका. MLBD and भोगीलाल लहरचन्द इन्स्टिट्यूट, दिल्ली

English and Sanskrit Ditionary - Monier Williams, Pub. - MLBD

पाइयलच्छीनाममाला, क. - परमार्हतकविराज धनपाल

भावप्रकाश निघण्टु, क. - आ. भावमिश्र, प्रका. - चौखम्बा प्रकाशन

अभिधानराजेन्द्र कोश (भाग १ से ७) क. - आ. विजय राजेन्द्रसूरिजी, प्रकाशक - भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

A grammar of the Prakrit Language, Author - R. Pischel, Tr.- Subadra Jha, Pub. - MLBD.

The Prakrit Grammarian, Author - Luigia Nitti Dolci, Pub. - MLBD

The Grammar of Hemchandra, Editor - P. L. Vaidya, Pub. - BORI

प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, क. - R. Pischel, अनु. - डॉ. हेमचन्द्र जोशी, प्रका. - बिहार सर्व भाषा परिषद्, पटना

प्राकृत शब्दानुशासन, क. - त्रिविक्रमदेव, अनु. - केशव वामन आप्टे, प्रका. जैन संस्कृति रक्षक संघ, सोलापुर

प्राकृतकल्पतरु, क. - राम शर्मन्, सं. - मनमोहन घोष, प्रका. - The Asiatic Society, Calcutta.
प्राकृतमंजरी (वररुचि कृत प्राकृतप्रकाश पर वृत्ति), सं. - मुकुन्द शर्मा, प्रका. - निर्णयसागर मुद्रणालय.
प्राकृतप्रकाश (वररुचिकृत), सं. - E. Cowell
प्राकृतलक्षणम् (चंडकृत), सं. - A. Rudolf Hornles
प्राकृताध्याय (क्रमदीश्वरकृत), सं. - डॉ. भोलाशंकर व्यास, प्रका. - P.T.S.
प्राकृतपैंगलम् (भाग १ व २), सं. डॉ. भोलाशंकर व्यास, प्रका. - P.T.S.
छन्दोनुशासन (स्वोपज्ञ वृत्ति सहित), सं. - H. D. वेलणकर, प्रका. - सिंघी जैन ग्रन्थमाला में भारतीय विद्या भवन, मुम्बई
आगमसुत्ताणि (भाग १ से ४५), सं. - मुनि दीपरत्नसागर, प्रका. - आगम श्रुत प्रकाशन
आगमसद्द कोसो (भाग १ से ४), क. - मुनि दीपरत्नसागर
नंदिसूत्रम् (हरिभद्रीय वृत्ति सहित), सं. - मुनि पुण्यविजयजी, प्रका. - P.T.S.
नंदिसूत्रम् (जिनदासगणिकृत चूर्णि सहित), सं. - मुनि पुण्यविजयजी, प्रका.- P.T.S.
नंदिसूत्रम् (मलयगिरि वृत्ति सहित)- हस्तलिखित प्रति संवत् १९०९ में लिखित, हजारीमल बहादुरमल बांठिया के संग्रह की आरुग्ग-बोहि-लाभं ज्ञानभण्डार (ABL) में संग्रहित प्रति
कसायपाहुड (जयधवलाटीका सहित) भाग-१
आचारांगचूर्णि (भाग-१), सं. - अनन्तयशविजयजी, प्रका. - दिव्यदर्शन ट्रस्ट, धोलका
आचारांगचूर्णि, सं. - आ. श्रीसागरानन्दसूरिजी, प्रका. - ऋषभदेव केसरीमल पेढी, इन्दौर
पउमचरियं, पूर्व सं. - डॉ. हर्मन जेकोबी, सं. - मुनि श्रीपुण्यविजयजी, प्रका. -P.T.S.
वैराग्यशतकम्, सं. - श्रीपुण्यकीर्तिसूरि, प्रका. - सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद
उत्तराध्ययनसूत्र (टीका सहित), टी. - शान्त्याचार्य, प्रका. - जिनशासन आराधना ट्रस्ट, मुम्बई
दशवैकालिकसूत्र (हारिभद्रीय वृत्ति सहित), सं. - सागरानन्दसूरि, प्रका. - देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत

दशवैकालिकसूत्र (वृद्धविवरण सहित), सं. - सागरानन्दसूरि, प्रका. - ऋषभदेव केसरीमल श्वेताम्बर जैन संस्था, इन्दौर
दशवैकालिकसूत्रम् (भाग १ से ४) (हारिभद्रीय वृत्ति और उसका गुर्जरानुवाद), अनु. - मुनि गुणहंसविजयजी, प्रका. कमल प्रकाशन ट्रस्ट, अहमदाबाद
दशवैकालिकसूत्रम् (सुमतिसाधुकृत वृत्ति सहित), सं. - मुनि कंचनविजयजी, क्षेमंकरसागर, प्रका. - देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार संस्था, सूरत
दशवैकालिकसूत्र (श्रीतिलकाचार्य वृत्ति सहित), संशो. - सोमचन्द्रसूरिजी, प्रका. - रांदेड़ रोड़ जैन संघ, सूरत
दशवैकालिकसूत्र (अज्ञातकर्तृक अवचूरि सहित), सं. - हस्तिमलजी म. व अमोलकचन्द सुरपुरिया, प्रका. - रावबहादुर मोतीलाल बालमुकुंद मुथा, सतारा
दशवैकालिकसूत्र, सं. - Ernst Leumann, प्रका. - डॉ. जीवराजजी घेलाभाई दोशी, अहमदाबाद (सन् १९२४)
दशवैकालिकसूत्र (मूल, हिन्दी अनुवाद), अनु. आ. श्रीअमोलकऋषिजी म., प्रका. - लाला सुखदेव सहायजी, हैदराबाद
आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से प्रकाशित कतिपय आगम ग्रन्थ
छन्दोनुशासनम् (भाग-१), लावण्यसूरिकृत टीका, प्रका. - ज्ञानोपासक समिति, बोटाद
गाहासत्तसई (गाहाकोस) (कविवर हाल कृत), सं. - M.V. पटवर्धन, प्रका. - P.T.S.
लघुसिद्धान्तकौमुदी (भैमी व्याख्या, भाग-१ से ६), क. - पं. श्रीभीमसेन शास्त्री, प्रका. - भैमी प्रकाशन, दिल्ली
सिद्धान्तकौमुदी, क. - भट्टोजि दीक्षित, प्रका. - MLBD
भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखन कला, ले. - मुनि पुण्यविजयजी, प्रका.- श्रुतरत्नाकर, अहमदाबाद
प्राचीन अर्धमागधी की खोज में, ले. - K. R. चन्द्र, प्रका. - प्राकृत जैन विद्या विकास फण्ड, अहमदाबाद
आगमसम्पादन की समस्याएँ, ले. - आ. महाप्रज्ञ, प्रका. - जै.वि.भा.
जिनागमों की मूल भाषा, प्रका. - प्राकृत जैन विद्या विकास फण्ड
KLEINE SCHRIFTEN, Walther Schubring, Harrassouwitz verlag, Wiesbaden, Germany.

परिशिष्ट - ३

प्रस्तुत प्रारूप सम्बन्धी संकेतसूचि एवं कुछ ज्ञातव्य

* इस मैटर में दशवैकालिकसूत्र की गाथाओं के क्रमांक स्वाध्यायमाला के अनुसार लगाये गये हैं ।
* दशवैकालिकसूत्र वृद्धविवरण, हारिभद्रीय टीका, सुमतिसूरिकृत टीका, तिलकाचार्य टीका आदि के उद्धरणों में उपर्युक्त व्याख्याग्रन्थों की मुद्रित प्रतियों से कहीं भिन्नता हो सकती है, क्योंकि हमने कई स्थलों पर जो उद्धरण दिये हैं उनमें प्राचीन हस्तलिखित प्रति से चूर्णि/टीका पाठ का मिलान कर योग्य पाठ को उद्धृत किया है ।
* हारिभद्रीय वृत्ति के उद्धरण में दिए पत्रांक आगमोदय समिति से प्रकाशित वृत्ति के हैं, तथा साथ में ब्रैकेट में दिये गए क्रमांक (भाग क्रमांक / पृष्ठ क्रमांक) कमल प्रकाशन ट्रस्ट से प्रकाशित वृत्ति के हैं ।
* आगमों के उद्धरण जहाँ भी दिये गए है, वहाँ ध्यातव्य है कि, आचारांग सूत्रकृतांग, ठाणांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, प्रज्ञापना, उत्तराध्ययन, नंदी और अनुयोगद्वार - इन शास्त्रों के उद्धरण 'महावीर जैन विद्यालय' से प्रकाशित आगमों से लिए गए है तथा उपर्युक्त के अलावा शेष आगमों के उद्धरण आगम-प्रकाशन समिति, ब्यावर (युवाचार्य श्रीमधुकर मुनि) से प्रकाशित आगमों से लिए गए हैं । इसके अतिरिक्त यदि अन्यत्र से लिए गए है वहाँ सूचित कर दिया गया है ।
* आगमों के उद्धरण में सूत्र / गाथा क्रमांक के पश्चात् ब्रैकेट में पाठकों की सुविधा के लिए सूत्र / गाथा को ढूँढने हेतु संक्षिप्त संज्ञा का उल्लेख किया है । वे संक्षिप्त संज्ञाएँ एवं उनका विवरण इस प्रकार है ।

(मजैवि.) = महावीर जैन विद्यालय से प्रकाशित आगम
(मधु.) = मधुकर मुनिजी - आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर
(ते.) = तेरापन्थ - जैन विश्व भारती, लाडनूँ
(स्वा.) = स्वाध्यायमाला

C/o. सम्पतराज रांका
२०१/बी, ओम साई निवास, मद्रासी राममन्दिर के सामने,
सुभाष रोड, विलेपार्ले (ई.), मुम्बई-४०००५७
फोन : ०२२-६१९३५०००-२०

सम्पादक की टिप्पणी

आचार्य श्रीसागरानन्दसूरिजी एवं आगमोदय समिति के सम्पादनों के बारे में श्रीरामलालजी ने अपने विस्तृत लेख में एक से अधिक बार अरुचिसूचक टिप्पणियाँ की हैं, जो हमें योग्य नहि लगती हैं । श्रीसागरानन्दसूरिजी महाराज ने अपने समय में अकेले हाथ आगमसम्पादन एवं वाचनाशुद्धि का जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह अपने आप में अनूठा है । हो सकता है कि उनके पास हर एक आगम की विविध भण्डारों से प्राप्य सभी प्रतियाँ उपलब्ध न हो, परन्तु उसका मतलब ऐसा नहि हो सकता कि उन्होंने प्रतियों की परीक्षा किये बिना ही अशुद्धप्रायः एक-दो प्रतियों को सामने रखकर ही सम्पादन किया था । उन्होंने हरसम्भव विविध ग्रन्थभण्डारों की अनेक प्रतियों का अवलोकन करके ही सम्पादन किया था यह एक ऐतिहासिक तथ्य है ।

वस्तुतः वे प्राचीन परिपाटी के आचार्य थे । आधुनिक शोध एवं सम्पादन की पद्धति उनके सामने नहि थी । इसलिए उन्होंने परम्परागत शैली से सम्पादनकार्य किया । लेकिन पाठ निकाल देना-बढ़ा देना-परिवर्तित कर देना ऐसा अनुचित कर्म उन्होंने जानबूझकर किया था ऐसी सोच भी उनकी जिनागम के प्रति भक्ति एवं निष्ठा को अन्याय करनेवाली होगी ।

उदाहरण के तौर पर श्रीसूत्रकृताङ्ग के टीकाकार भगवान शीलाङ्काचार्य ने भी लिखा है कि ''इह च प्रायः सूत्रादर्शेषु नानाविधानि सूत्राणि दृश्यन्ते, न च टीकासंवादी एकोऽप्यादर्शः समुपलब्धः, अत एकमादर्शमङ्गीकृत्याऽस्माभिर्विवरणं क्रियते इति । (सूत्रप्रतियों में वाचनागत विविधता का कोई पार नहीं है, तिस पर चूर्णिसम्मत सूत्रपाठ वाली प्रति तो एक भी नहि मिली, इसलिए एक ही प्रत की वाचना को मान्य करके उस पर हम विवरण कर रहे हैं।)'' लगता है कि यदि हमारे जैसे संशोधनपरस्त विद्वान उस समय जिन्दा होते तो शायद श्रीशीलाङ्काचार्य को भी कह देते कि ''एक प्रति से काम नहि चल सकता, पहले सब प्रतियों के आधार पर एक समीक्षित वाचना तैयार कीजिए, फिर उस पर विवरण लिख लीजिए !''

श्रीसागरानन्दसूरिजी महाराज के सामने भी विभिन्न प्रतियों की विविध वाचनाएँ रही होगी । उनमें से उनको अपने अनुभव के अनुसार जो वाचना ठीक लगी, उसका उन्होंने ग्रहण किया । इस परिस्थिति में उन्होंने वाचना में विकृतियाँ

पैदा कर दी है और पश्चाद्वर्ती सम्पादकों ने उसका अन्धानुकरण किया है ऐसा मानना निरी गलतफहमी ही होगी ।

आगमों की वाचना का आमूल परिवर्तन यानी नये आगमों की रचना का कृत्य तो स्थानकवासी परम्परा के श्रीघासीलालजी ने किया था, जो आगमों के इतिहास में एक खेदजनक घटना प्रतीत होती है । खेद है कि उसके बारे में श्रीरामलालजी ने कुछ भी जिकर नहि की है ।

कहना इतना ही है कि हम संशोधन का कितना भी महत्त्वपूर्ण कार्य कर दें (और वह करना नितान्त आवश्यक भी है), लेकिन हम हमारे उन पूर्वजों के प्रति अनृणी नहि हो सकतें कि जिनके हाथों इसकी नींव डाली गई थी ।

— शीलचन्द्रविजय

* * *

विहंगावलोकन

— उपा. भुवनचन्द्र

अनुसन्धान-६५

विज्ञप्तिपत्र-विशेषाङ्कना चोथा खण्डमां गूर्जर-हिन्दी-राजस्थानी भाषानां वि.पत्रो संगृहीत थयां छे. संस्कृत पद्यो तो वि. पत्रोमां छे ज, आ पत्रोमां पंजाबी, मराठी, चारणी भाषा पण अहीं-तहीं देखा दे छे. वि.पत्रोनी साथे तेनो सारांश अपायो छे, वधुमां अनु.ना सम्पादकश्रीए प्रत्येक पत्र उपर पोतानुं अवलोकन पण अलगथी नोंध्युं छे - जेमां पत्रोनी विगतोने ऐतिहासिक-सामाजिक दृष्टिए तपासी छे. संस्कृत वि.पत्रोमां काव्यात्मक वर्णन विशेष होय छे, ज्यारे गूर्जर व. भाषानां वि.पत्रोमां स्थूळ वर्णन/विगतो वधु सांपडे छे. ए दृष्टिए आ वि.पत्रो रसाळ लागे छे.

नगरोनां नाम, राजा, समाजो, नगरव्यवस्था, इतिहास, कळा-कसब, भाषा, आचार्यो, जैन परम्परा वगेरे विषयोनी अभ्यासयोग्य सामग्री आ वि.पत्रोमां भरी पड़ी छे. एक वात नोंधवी रही **:** उत्तरोत्तर संस्कृत भाषानुं स्तर नीचुं आवेलुं देखाय छे. अमुक पत्रोमां तो अगडंबगडं संस्कृत चलावावामां आव्युं छे. बीजी केटलीक वातो पण नोंधीए **:**

— नगरवर्णनमां 'अढार वरण'नी वात लगभग छे, जे आजे पण सांभळवा मळे. वि.पत्रोमां आनी साथे '३६ पवन-पौन'नो उल्लेख आवे छे. (वि.पत्र १५, ८ इत्यादि). छत्रीस 'पवन' समजाता नथी.

— सुरतथी मुंबई लखायेल वि.पत्र (क्र. १७) सं. १८८९ मां लखायो छे, जे अर्वाचीन गणाय. तेमां पण स्वप्नदर्शन के तेनी उछामणीनो उल्लेख नथी.

— एक महत्त्वनो अपवाद मळ्यो छे **:** सं १७७९ना सुरतथी लखायेल पत्रमां आटला शब्दो छे - ''तथा श्रीमहावीरनुं पालणुं पट्टणी सा. सभाचंद कचरा साडंबरपणें लीधुं छे.'' स्वप्नदर्शननो उल्लेख नथी, उछामणीनो सीधो उल्लेख नथी.

– साध्रम, समाधरम : आ शब्द विशे आगला अवलोकनमां नोंध करी हती. प्रस्तुत अंकमां क्र. २६ना वि.पत्रमां (पृ. २७१) आ शब्द ''साध्रम हीयडै साच ए'' आ पंक्तिमां छे. क्र. १५ना वि.पत्रमां आ शब्द वधु स्पष्ट मळे छे : उमराव साव तिनकै अपार है, स्वामधरम बहु हुजदार'' (पृ. ११३). आ ठेकाणे आ शब्द स्पष्ट थाय छे. मूळ शब्द स्वामिधर्म छे अने साध्रम, सांमध्रम, सामधरम वगेरे तेना भ्रष्ट उच्चारो छे. सन्दर्भ परथी आनो अर्थ वफादारी, स्वामिभक्ति जेवो समजाय छे.

– 'गाहीड' शब्द राजस्थानी भाषाना वि.पत्रोमां एकथी वधु वार आवे छे. आ अंकमां पण छे. (पृ. २७१). अर्थ स्पष्ट थतो नथी.

– पत्रो जे स्थानेथी लखाया छे अने जे स्थाने मोकलाया छे ते स्थानो संशोधनपात्र छे. कोई शोधछात्र आ विषय पर संशोधन करे तो त्यांनी खूटती विगतो कदाच आ पत्रोमांथी मळी आवे. जैन सङ्घनी वर्तमान स्थितिनी जाणकारी पण मळे.

छपायेल वाचनाओमां केटलांक शुद्धीकरण :

पृ.	पं.	अशुद्ध	शुद्ध
११	६	जायणो	जाणयो
४६	१७	क्रीड च०	क्रीडच्च०
४६	२१	प्रीति(ती)यते	प्रतीयते
९६	३	अमली बांण	अमलीबा(मा)ण
१३०	नीचेथी ३	रहेज महां(हं)त	रहे जहां महंत
२४०	७	एक ठूल	ए कबूल
२७१	नीचेथी २	साध्र महियडै	साध्रम हियडै
२९३	नीचेथी १०	कतहु री करन	कत दूरी करन
		कहां सोवरण	कहांसे वरण

शब्दो विशे –

वि.पत्र क्र.

९	पोयण	माछली नहीं, पोयणां

१०	वेसरवाहिनी	ऊंटगाडी होई शके
१३	वावला	'बावला' वांचवुं जोईए
	दुजणी	परायापणुं, पारकापणुं
	तकसीर	चूक, भूल, गुनो
१४	अधग	'अधम' शब्द संभवे
	खाग	खड्ग
	चित्रामवाल	चित्रोवाळुं (चितारो नहीं)
	फब	शोभे (फावे)
	अडालच	अदालत होई शके
	पोहकरणा	पुष्करणा ब्राह्मण
	अपणाइत	पोतानो मानेल
१५	गल्ल	'मुख' होइ शके
	हमरके	अमारे त्यां
१६	मीर	मुसलमानी जाति
२०	ढिग	पासे
२९	भिस्त	बेहस्त (स्वर्ग)
	ठाढीक/ठाढेंक	ऊभी रही /ऊभा रह्या
	ओसंकिया	पाछा हठ्या (संकोच नहि)

पवन (पृ. ४९, पं. ५) रिधु (पृ. ४५, पं.११) जेवा शब्दो नोंधाया नथी. 'गेंवरघट्टा' जेवा शब्दो, शब्दकोशमां लेवा जेवा गणाय (अर्थ – गजवर-घटा). 'छेलछोगाळा' शब्द आजे पण प्रचलित छे. पृ. ५४ पर तेनुं 'छेल-चोगाळा' एवुं जूनुं रूप मळे छे. पृ. ५६ पर 'विरासीर महावीर' तीर्थ राणकपुरनी पासे छे एवो उल्लेख छे. आ शब्द बीजा वि.पत्रमां पण आव्यो छे.

अनुसन्धान ६६

आ अंङ्कमां विविध विषय अने विविध प्रकार (तथा विविध भाषाओ)नी कृतिओनो रसप्रद अने वाचनक्षम गुच्छ प्रगट थयो छे. आ अंकमां कागळ नेचरल शेडनो वपरायो छे. आ प्रकारनो कागळ वाचनने अनुकूळ होय छे. आशा राखीए के अनुसन्धान माटे हवे आ ज कागळ निश्चित कराशे.

प्रथम रचना वैराग्यकुलकम् प्राचीन छे. शब्दप्रारम्भे नकार आमां छे. मध्यमां 'न'श्रुति पण छे (एन्हि, नाओ, गिन्हामि वगेरे). आ प्राचीन प्राकृत (मागधी, अर्धमागधी)नुं लक्षण छे. संस्कृत साथे निकटता आ रचनानी भाषामां बची छे, जोके देश्य शब्दो पण छे ज. सूडिंति, वड्डा, गोसे जेवा शब्दो प्राचीन प्राकृतना छे. गा. ३२मां 'पुरिसो' छपायुं छे त्यां 'पुरिमो' होवानी वधु सम्भावना छे. ''.... तो हुं रत्नाधिक होवाना कारणे सर्व मुनिओमां पुरुष होत'' एवो अर्थ विचित्र गणाय; ''...सर्व मुनिओमां पुरिम = प्रमुख, आगळ पडतो होत'' एवो अर्थ सुसंगत थाय. हस्तप्रतना वाचनमां 'मो' अने 'सो' अक्षरो वांचतां गरबड़ थई शके छे.

'प्राचीन पांच रचनाओ' अपभ्रंशकालनी तथा तेना नजीकना समयनी छे. पहेली बे कृतिओ अपभ्रंश-गूर्जरना सन्धिकाळनी जणाय छे. बन्नेमां स्वरूप-कल्पन-शब्दावलीनी समानता जोतां बन्नेना कर्ता एक ज होवानी शक्यताने पुष्टि मळे छे. ए ज रीते त्रीजी अने चोथी रचनानी समानता पण देखाई आवे छे. पांचमी रचनामां गरबड़ जेवुं लागे छे. १२मी गाथाथी विषय अने छन्द - बन्ने बदलाय छे. ११मी गाथामां उपसंहार छे, वळी कळशना रूपनी गाथा छे. ११ गाथा अपभ्रंशनी छे, पछीनी गाथाओ अपभ्रंशनी छे पण प्राकृतनी वधु नजीक छे. कृति ५, गा. ४मां 'पच्छयावु' छे त्यां 'पच्छायावु' शुद्ध पाठ समजाय छे. गा. २६ना उत्तरार्धनो भाव आवो कंइक समजाय छे. हे जीव, जेणे करंबो खाधो ते विलम्ब पण सहन करशे. आ अर्थने ध्यानमां लेतां चोथुं चरण आम वांची शकाय : जिणि जीव! करंबउ खद्ध एव, सहिस(स्स)इ स विलंबउ सययमेव ।

'द्रव्यपर्याययुक्ति' नामक कृतिमां द्रव्य-गुण-पर्याय, व्यवहार-निश्चय जेवा तात्त्विक विषयनी विचारणा थई छे ते मननीय छे. स्याद्वादने पण स्याद्वाद लागू पडतो होय तो 'स्याद्वाद साचो पण अने स्याद्वाद खोटो पण' एवुं सिद्ध थाय ! अथवा 'स्याद्वाद बधी वस्तुने लागू पडे अने न पण पडे' - एवुं तारण नीकळे. बन्ने रीते स्याद्वाद नबळो पडे. आ ज मुद्दाने आगळ लंबावतां 'पाप कर्तव्य नथी अने कर्तव्य पण छे 'एवो निष्कर्ष पण काढी शकाय ! जो स्याद्वादने स्याद्वाद लागू न पडे एम कहीए तो स्याद्वादनो सिद्धान्त अधूरो

ठरे ! आ गूंचनुं सुन्दर समाधान कर्ताए आ निबन्धमां आप्युं छे. आ समाधान आवुं छे : स्याद्वादमां एकान्तवादने स्थान नथी तेथी स्याद्वाद बधे ज लगाडवो एवो एकान्तवाद अमने स्वीकार्य नथी. जे स्थाने स्याद्वाद लगाडवो योग्य नथी त्यां न ज लगाडवो जोईए. जे अनिच्छनीय छे त्यां स्याद्वाद भले न लागे, त्यां एकान्तवाद भले रह्यो ! आने आपणे आ रीते पण मूकी शकीए : एकान्तवाद सर्वथा हेय छे एवो एकान्तवाद अमने इष्ट नथी !

प्रस्तुत रचनामां सम्पादके श्रमपूर्वक संशोधन कर्युं छे, तेम छतां केटलांक स्थान सम्मार्जनने पात्र रहे छे. पृ. २०, पं. ८ - 'पर्यायान्तरेणा-ऽस्तित्वरूपे' छे त्यां '०रेणानस्तित्व०' अथवा तो '०रेण नास्तित्व०' जेवो पाठ बंधबेसतो थाय.* पृ. २०, पं. नीचेथी ८ - 'सङ्गतिमङ्गति' छे त्यां [न] उमेरवो पडे एम छे. पृ. २५, पं. ११ - 'ऽनित्यमेव' त्यां शङ्कासूचक प्रश्नचिह्न मूक्युं छे. अहीं कर्तानो आशय एवुं कहेवानो छे के सिद्धोनुं ज्ञान आकाशनी जेम वस्तुगत्या नित्य छे; आथी 'ऽनित्यं' नहीं पण 'नित्यमेव' पाठ कर्ताने इष्ट होय. पृ. २९, पं. नीचेथी १४ 'न ह्येकान्तदृष्टापि' छे त्यां '०दृष्ट्यापि' स्वीकारीए तो अर्थसङ्गति विशेष सुगम थाय.

वागडपद्रपुरमण्डन आदिनाथ स्तवनना श्लो. १मां 'श्रियां'ने स्थाने 'श्रिया' वांचवुं जोईए. श्लो. ६मां 'नाऽवलोके'(?)मां शङ्का नथी. परोक्ष भू.का.मां कर्मणि / भावे प्रयोग होय तो 'अवलोके' रूप सङ्गत बने.+ श्लो. ८मां 'ऽस्महं' छपायुं छे ते प्रूफवाचननी भूल हशे. 'ऽस्म्यहं' होवुं घटे.

वृन्दावनकाव्यनी एक अप्रगट टीका आ अङ्कमां प्रकाशित थई छे. जैन विद्वानोना शुद्ध साहित्य प्रेमनोपरिचय करावतुं साहित्य पुष्कल छे. साहित्यक्षेत्रे जैन-अजैन जेवो भेद जैन साहित्यकारोए क्यारेय नथी राख्यो. अजैन साहित्यनुं अध्ययन, विवेचन, संरक्षण - बधुं ज तेमणे कर्युं छे. आजे पण जैन ज्ञानभण्डारोमां विश्वना कोई पण विषय के धर्मनुं साहित्य प्रेमथी

* नास्तित्वं पर्यायान्तरेणाऽस्तित्वरूपे परिणमति - ए पाठ बराबर ज छे.
जैन मते कोईपण वस्तुनो अभाव अेनो सर्वथा विनाश नथी होतो, अेनुं बीजा स्वरूपे परिणमन मात्र होय छे. जुओ भग. १.३.६ - मां प्रस्तुत पाठनी टीका. **— सं.**

+ ''हराद्याः समर्था मया नाऽवलोके''मां परोक्ष भू.का.मां के बीजी कोई रीते 'अवलोके'नी रूपसिद्धि शक्य न होवाथी प्रश्नचिह्न करेलुं छे. **— सं.**

रखाय छे – सचवाय छे. सामे पक्षे, अजैन साहित्यकारोए जैन साहित्य पर कार्य कर्युं होय एवा दाखला नगण्य / नहिवत् छे. आधुनिक कालमां, जो के, जैनसाहित्यनुं अध्ययन / संशोधन अजैन विद्वानो द्वारा थतुं रह्युं छे.

वृन्दावनकाव्य संस्कृतभाषानुं विश्वप्रसिद्ध काव्य छे. ए शब्द चमत्कृति / शब्दालङ्कारथी समृद्ध छे. संस्कृत भाषानी मूळभूत विशेषताना कारणे शब्दरमत करवानो कविओने घणो अवकाश मळे छे. शब्दकोश, व्याकरण, कल्पना – इत्यादि वस्तुओ पर प्रखर प्रभुत्वना कारणे वृन्दावन काव्यना कर्ताए पंक्तिए पंक्तिए प्रासानुप्रासना ढगला कर्या छे. आवी रमत करवा जतां कृति क्लिष्ट अने दुर्बोध बनी जवानो भय रहे, परन्तु आ काव्य प्रसन्न-मधुर बन्युं छे. एक जैन मुनि रचित टीका अहीं सम्पादित थईने प्रकाशमां आवी छे. कृतिनुं सम्पादन स्वच्छ अने सुन्दर थयुं छे.

महाकवि मेघविजय गणीनी बे अप्रगट कृतिओ आ अङ्कमां प्रथम वार बहार आवे छे. सहज-सरस यमकोथी कृतिने अलङ्कृत कराइ छे. आ महाकविए मारुगूर्जर भाषामां रचनाओ करी ज होय, परन्तु उपलब्ध नथी. एमनी एक मारुगूर्जर रचना अहीं प्रकाशित छे.

विजयसेनसूरि प्रत्ये असीम गुरुभक्तिनां दर्शन करावती बे गूर्जर रचनाओ रसपूर्ण छे अने साथे महत्त्वपूर्ण पण छे. अनु०ना सम्पादकश्रीए आना महत्त्व विशे नोंध करी छे. आ पत्र विज्ञप्तिपत्र नथी पण ऊर्मि-पत्र छे, कविहृदयी शिष्योनी गुरुभक्ति आमां उछाळा मारती सरितानी जेम वही नीकळी छे. पृ. ७६, नीचेथी त्रीजी पंक्तिमां 'चोर वखार' छे; अहीं 'चोरचखार' वांचवुं जोइए. 'चोरचखार' शब्द कच्छीमां आजे पण बोलाय छे. पृ. ७८, पं. १२- 'विलगुअछुं' एम छपायुं छे. 'विलगु अछुं' एम वांचवुं जोईए. एनो अर्थ छे : 'वळग्यो छुं'. (वळगुं छुं – नहि).

'मेघकुमारना बारमासा' भावसभर वैराग्यप्रेरक रचना छे. वाचना शुद्ध छे. 'अम्बिकाचउपइ' पण शुद्ध छपाई छे. क. ४मां चोपड़ शब्द छे ते चोपद-चोपगांना अर्थनो नथी. चोपड़ एटले घी. बार व्रतनी वही विस्तृत अने विवरणयुक्त छे, नजीकना समयनी छे एटले व्रतग्रहण करनारने मार्गदर्शक बने एवी छे.

'अर्हत् पार्श्वनो असली समय' लेख पुरातत्त्व / इतिहासना प्रखर

विद्वान श्री ढांकी तरफथी मळे छे. शोध/संशोधननी आधुनिक परिपाटी साक्ष्य, प्रमाण, तुलना अने तर्कने महत्त्व आपे छे. एकथी वधारे स्रोतोमांथी सन्दर्भो मेळवीने चकासे छे. भ. महावीरना जन्मस्थान, विचरणक्षेत्र विशे, हरिभद्रसूरि के दिवाकरजीना समय विशे जुदा जुदा विद्वानोए ऊहापोह कर्यो छे अने पोतपोताना निष्कर्ष आण्या छे. परम्परा कथा-किंवदन्तीमां पण तथ्यांशो पड्या होय छे अने तेने पण संशोधननी एरण पर चडावीने तपासवामां आवे छे. प्रस्तुत लेखमां ए रीते विचारणा थई छे. आ प्रकारनी तपास चालती रहे ए आवकार्य छे. तर्कथी बधी ज वस्तुओनो निर्णय थई नथी शकतो ए जेटलुं साचुं छे एटलुं ज ए पण साचुं छे के ज्यां तार्किक अभिगम नथी होतो त्यां भय, भ्रान्ति अने अन्ध अनुकरण पांगर्या विना रहेतां नथी.

'जैनदर्शन का नयसिद्धान्त' तथा 'जैनदर्शन का निक्षेपसिद्धान्त' – बंने लेख अभ्यासीओ माटे उपयोगी छे. ''कज्जमाणे कडे'मां नयसम्मति'' शीर्षक लेखमां सुन्दर छणावट थई छे. प्रत्येक नयना शुद्ध अने अशुद्ध एवा बे रूप स्वीकारवामां आव्या छे. प्रथम नयनुं कथन तेनी पछीना नयमां पण विषय बनतुं होय छे जे ते नयनो अशुद्ध प्रकार गणाय छे. एक-बीजामां नयो आ रीते मिश्रित थता होय छे ए मुद्दो प्रस्तुत चर्चामां ध्यानमां लेवा जेवो खरो. आ प्रकारनी चर्चाओ आक्षेप-प्रत्याक्षेपनी रीते नहि पण विषयनो बोध स्पष्ट करवा अर्थे थाय तो ते आवकार्य गणावी जोईए.

जैन देरासर
नानी खाखर – ३७०४३५
जि. कच्छ, गुजरात

* * *

पत्रचर्चा

मस्करिन् / मङ्खलि विशे

— उपा. भुवनचन्द्र

अनु. ६६ना 'टूंक नोंध' विभागमां 'मस्करिन्' शब्द विशे मु. त्रैलोक्यमण्डनविजयजीनी एक नोंध प्रगट थई छे. 'मङ्खलि'मांथी संस्कृत रूपान्तर थईने 'मस्करिन्' थयुं एवुं जणाववानो लेखकनो आशय समजाय छे. आवुं संस्कृतीकरण थतुं आव्युं छे तेनी ना न कही शकाय. परन्तु प्रस्तुत शब्दनी सफर ए रीते थई होय एवुं मानता पहेलां थोडुं विचारवानी जरूर छे.

मङ्ख, तेमांथी मङ्खलि, तेमांथी मक्खलि, तेनुं रूपान्तर मस्करिन् – आवो क्रम लेखक सूचवे छे. आ क्रम स्वीकारवामां व्युत्पत्ति अने शब्दविकासना नियमोनो भङ्ग थतो जणाय छे. ''आ शब्दनुं उच्चारण केटलेक ठेकाणे मक्खलि थाय छे.'' – एम लेखकश्रीए नोंध्युं छे. हवे विचारवानुं ए छे के 'मङ्खलि'नुं 'मक्खलि' थाय ए स्वाभाविक गणाय के 'मक्खलि'नुं 'मङ्खलि' थाय ए सहज गणाय ? अने पछी 'मङ्खलि'मांथी 'मस्करिन्' शब्द आकार ले एवो क्रम उच्चारनी दृष्टिए शक्य गणाय ?

लोको द्वारा उच्चारणनी दृष्टिए 'मक्खलि' पूर्ववर्ती अने 'मङ्खलि' पश्चाद्वर्ती होवो जोईए; 'क्ख'मांना 'क्'नो उच्चार लुप्त थाय त्यारे तेना स्थाने अनुनासिक / अनुस्वार देखा दे अने 'मङ्खलि' शब्द स्थान ले. ए ज रीते 'मक्खलि' अने 'मस्करिन्'मां पण 'मस्करिन्'मांथी 'मक्खलि' सहजप्राप्त गणाय.

'मस्कर' शब्द पाणिनिना समयनो छे. ए समये संस्कृत प्रचलनमां हतुं, प्राकृतो हजी ग्राम्य भाषाओ गणाती हती. ए युगमां उच्च वर्ण अने शिक्षित वर्ग संस्कृतमां व्यवहार करतो, बालको–अशिक्षितो–हीन वर्णना लोको अशुद्ध / भ्रष्ट संस्कृतनो प्रयोग करता. आ प्रवाह पाणिनिथी पण पहेलां शरु थई चूकेलो अने मागधी–अर्धमागधी वगेरे भाषाओना पिण्ड बंधावा मांड्या हता ए हकीकत छे. अने ए पण हकीकत छे के मागधी वगेरे भाषाओना उच्चार संस्कृतनी निकटना हता. 'प्रेक्षते'नुं पैशाचीमां 'पेस्कदि' वगेरे मुद्दा तो लेखके

पण नोंध्या छे. ज्यारे आ प्रक्रिया चालु हती त्यारे मस्करिन् जेवा शब्द माटे अवळो क्रम शा माटे विचारवो पडे ? मस्करिन्नुं मागधीमां 'मस्कलि', अर्धमागधीमां मक्खलि, आगळ जतां क्नो लोप थतां मङ्खलि – आवो स्वाभाविक क्रम तजी देवानुं कोई कारण नथी.

सवाल रह्यो कल्पसूत्रमां मळता 'मङ्ख' शब्दनो. 'चित्रपट देखाडीने आजीविका चलावनारी जाति' एवा अर्थनो मङ्ख शब्द देश्यभाषानो स्वतन्त्र शब्द ज गणवो जोईए. मस्करिन्–मांथी नीपजेला मक्खलि / मङ्खलि साथे एनी सेळभेळ थई होय ए बनवाजोग छे, कारणके मङ्खनो पुत्र गोशालक संन्यासी – 'मक्खलि' बन्यो त्यारे सामान्य जनता मङ्खलिपुत्त अने मङ्खपुत्त वच्चे गोटाळो करी शके.

भाष्यकारे 'मस्करिन्'नो अर्थ 'कशुं करो नहि' एवो उपदेश आपनार संन्यासी – एम कर्यो छे ते मुद्दो अहीं कार्यसाधक न बने. संस्कृतमां 'दण्ड'–वाचक मस्कर शब्द हतो ज. वधुमां ए दण्डी परिव्राजको नियति / निवृत्तिनो बोध आपता हता, तेथी प्रवृत्तिवादी ब्राह्मण परम्परा 'मस्कर'मांथी कटाक्षमां 'मा कुरुत' – 'मस्कर' एवी व्युत्पत्ति उपजावी तेमनी हांसी करे ए सुसम्भवित छे. शब्दनो व्युत्पत्तिप्राप्त अर्थ बाजुए राखी, अन्य अर्थ — मार्मिक / सूचक अर्थनो बोध करावva माटे आवी व्याख्याओ नीपजाववानी परिपाटी वैदिक / जैन / बौद्ध परम्परामां हती, जेने निपात के निरुक्ति कहेता हता. एवी निरुक्त व्याख्याओ आजे पण थती होय छे – मोहनो क्षय ते मोक्ष. दुनिया = जेना दु(बे) निया(न्याय) होय ते दुनिया, इत्यादि.

सारांश : मङ्खलि / मक्खलि शब्द ए युगनो छे के ज्यारे संस्कृत शब्दो भ्रष्ट थई प्राकृत स्वरूप पामी रह्या हता, तेथी मस्करिन् मांथी मस्कलि → मक्खलि → मङ्खलि – ए रीते आ शब्द विकस्यो होय एम मानवुं तर्कसङ्गत गणाय. 'मस्कर' शब्द प्राचीन संस्कृतनो शब्द छे. 'मङ्ख' शब्दने स्वतन्त्र देश्य शब्द समजवो जोईए. 'मा कर्षत' एवी व्याख्या विशेष अर्थ काढवा माटे योजायेल निरुक्त / निपात छे, 'मस्कर'नो 'दण्ड' एवो अर्थ तो कोश / व्याकरणथी सिद्ध छे ज. मस्करी परिव्राजको नियति / निवृत्तिना पुरस्कर्ता हता, 'मङ्ख' एक जातिवाचक नाम हतुं. गोशालक मङ्ख हतो, पछी

मस्करी (मक्खलि) बन्यो त्यारे 'मङ्खु' अने 'मक्खलि' वच्चे सेळभेळ थई होय ए सुशक्य छे. आ सेळभेळ जैन साहित्यमां थई जणाय छे केमके तेमनी पासे 'मङ्खु' शब्द हतो. अजैन ग्रन्थोमां मक्खलि / मस्करी ज देखाय छे.

जैन देरासर
नानी खाखर - ३७०४३५, जि. कच्छ, गुजरात

* * *

पूरवणी

पूज्य उपाध्याय भगवन्तनी आ पत्रचर्चा परत्वे केटलाक मुद्दा विचारणीय जणाय छे :

१. चित्रपट देखाडीने गुजरान चलावती जाति माटे वपरातो 'मङ्खु' शब्द देश्य नथी. देश्य 'मङ्खु' शब्दनो अर्थ तो 'अण्डगोल, वृषण' थाय छे. अे ज रीते 'प्रेक्षते'नुं 'पेस्कदि' मागधीमां थाय छे, पैशाचीमां नहि. वळी 'मक्खलि' प्रयोग पालिसाहित्यमां जोवा मळे छे, अर्धमागधीसाहित्यमां तो 'मङ्खलि' प्रयोग ज थाय छे. जोके आ बधी भाषिक विशेषताओने मूळ चर्चा साथे झाझी निसबत नथी.

२. 'मस्करिन्' शब्दनी कर्मनिषेधपरक व्युत्पत्ति उपजावी काढवामां आवी होय ते खरेखर शक्य छे ज. परन्तु अे ज रीते दण्डधारणपरक व्युत्पत्ति पण उपजावी काढेली ज होय ते शक्यता साव नकारी काढवा जेवी नथी. केमके पाणिनि पूर्वे दण्ड अर्थमां 'मस्कर' शब्द वपरातो होवानां प्रमाणो नथी. तेमज कोशकारोअे पाणिनिना अनुसरण रूपे कोशमां दण्डअर्थपरक 'मस्कर' शब्द नोंध्यो होय ते सिवाय पाणिनि पछीना संस्कृत साहित्यमां पण तेनो सामान्यतः वपराश देखातो नथी. तेथी सम्भवित छे के मस्करी परिव्राजकोनी ओळखाण आपवा खातर ज 'मस्कर'नो वेणुदण्डपरक अर्थ करवामां आव्यो होय.

३. दण्डी संन्यासीओनी अनेक परम्पराओ प्रवर्ती होवानुं इतिहास जणावे छे. तेमांथी नियतिवादी (निवृत्तिवादी) संन्यासीओ माटे ज 'मस्करी' शब्द वपरावानुं कारण शुं ? ते पण विचारणीय छे. बौद्ध संस्कृत ग्रन्थो तो वळी 'मस्करी' शब्द 'दण्डी परिव्राजक' अर्थमां नहि, पण गोशालक माटे ज

सीधो प्रयोजे छे.

४. गोशालक जो 'मस्करी (-दण्डी) परिव्राजक' होवाना लीधे ज 'मङ्खलि' गणाता होत, तो अर्धमागधी साहित्यमां उपलब्ध तेमनां अनेक वर्णनोमांथी कोईक वर्णनमां तो 'दण्ड'नो उल्लेख अवश्य मळत. पण तेम तो नथी. कमसे कम आना परथी अेटलुं तो साबित करी ज शकाय के 'मस्करी'नो सीधो सम्बन्ध 'दण्डी' साथे नथी. केमके अे वगर तो मस्करी शब्द ज जेना पर आधारित होय ते दण्डनो उल्लेख केम नथी ते समजावतुं शक्य नथी.

५. उपाध्याय भगवन्त जणावे छे के ''गोशालानुं जातिवाचक नाम 'मङ्खु' अने तेनुं परिव्राजकपणानुं नाम 'मक्खलि' वच्चे जैन साहित्यमां भेळसेळ थई गई छे.'' आ विधान समजवुं मुश्केल लागे छे. केमके गोशालक पोते 'मक्खलि' नहीं, पण 'मङ्खलिपुत्त' तरीके ओळखाता हता, अने ते पण तेमणे प्रव्रज्या स्वीकारी ते पूर्वथी. 'मङ्खलि' तो तेमना पितानुं नाम हतुं. ''एयस्स गोसालस्स मङ्खलिपुत्तस्स मङ्खलि नामं मङ्खे पिया होत्था'' (भग० १५.१.२). हवे जो 'मङ्खलि' शब्दने परिव्राजकपणा माटे ज नियत करीशुं तो गोशालकना पिताना 'मङ्खलि' नामनो खुलासो अशक्य छे. तो 'निग्गंठ नातपुत्त' के 'संजय वेलट्ठिपुत्त'मां जेम ज्ञात के वेलट्ठिने गोत्रनाम समजीअे छीअे, तेम 'गोसाल मङ्खलिपुत्त'मां 'मङ्खलि'ने परिव्राजकपणानुं सूचक नहि, पण गोत्रवाचक नाम तरीके न समजी शकाय ? अने जो अेम समजीअे तो 'मङ्खलि'ने 'मङ्खु' अे जातिवाचक नाम साथे वधारे सम्बन्ध होई शके के 'मस्करिन्' अे परिव्राजकपणा साथे ?

६. उपाध्याय भगवन्तनुं अे विधान यथार्थ जणाय छे के 'मङ्खलि' मांथी 'मस्करिन्' थवुं शब्दविकासना क्रमनी दृष्टिअे शक्य नथी. पण बीजी रीते जोईअे तो 'मस्करिन्'मांथी पण 'मङ्खलि' थवुं शक्य नथी जणातुं. तो पछी, जेम वैदिक संस्कृत / प्रथमस्तरनी प्राकृतना आपणे 'द्वितीयस्तरीय प्राकृत' अने 'संस्कृत' अेम बे फांटा स्वीकारीअे छीअे तेम, मूलभूत कोई अेक ज शब्दना, संस्कृत 'मस्करी', मागधी 'मस्कली', पाली 'मक्खली', अर्धमागधी 'मङ्खली' अेम समान्तर परिवर्तनो समजी न शकाय ?

— त्रैलोक्यमण्डनविजय

'जैन साहित्य समारोह'मां रजू थयेला

एक शोधपत्र विषे संशोधन

- **विजयशीलचन्द्रसूरि**

'गौतमस्वामीनो रास' अे सं. १४१२मां रचायेल, उपाध्याय विनयप्रभनी एक प्रख्यात अने लोकप्रिय रचना छे. तेना कर्ता विशे, प्रक्षिप्त कडीओमां आवतां 'विजयभद्र, भद्रबाहु गुरु' वगेरे विभिन्न नामोने कारणे, घणो व्यामोह प्रवर्ततो हतो. परंतु मो. द. देशाई, अगरचंद नाहटा, हरिवल्लभ भायाणी वगेरे विद्वानोअे ते व्यामोहनुं निराकरण करीने, आ रासना कर्ता 'विनयप्रभ उपाध्याय' ज होवानो निश्चय क्यारनोये करी आप्यो छे. नाहटा-भायाणीअे तो आ रासना पाठनो-वाचनानो पण निर्णय कर्यो छे, अने विविध प्रक्षेपोने गाळी नाखीने मूळ कृतिनी वाचना प्रगट करी छे. अेटले आ कृति विषे द्विधा के शङ्का करवाने हवे कशो ज अवकाश रह्यो नथी.

परंतु हमणां 'स्वाध्याय' त्रैमासिकना पु. ४९, अङ्क १-४ मां प्रगट थयेल ''गौतमस्वामीनो रास - एक अध्ययन'' शीर्षकनो, मीना पाठकनो शोध-लेख जोवामां आव्यो. तेमां तेमणे जे विगतो अने विश्लेषण के संशोधन नोंध्यां छे, तेमज जे अशुद्ध वाचना प्रकाशित करी छे ते जोतां, आजना संशोधकोनी अज्ञता तथा सज्जताविहोणां संशोधनो परत्वे खेद थाय तेवी अेक वधु साबिती मळी छे.

सम्पादकने कृतिनी रचनाना वर्ष अने हस्तप्रतना लेखनना वर्ष - ए बे वच्चेना तफावत विषे झाझी समज होय एम नथी जणातुं. पोताना लेखमां वारंवार तेमणे आ बे वच्चे सेळभेळ करीने तारणो आप्यां छे. तेमांनुं अेक तारण जोईअे :

''बीजुं केवलरचित गौतमपृच्छा चोपाईनी हस्तप्रत पण प्राच्यविद्या-मन्दिरमां मळे छे. तेनो लेखनसंवत १८५२ (१७९६) छे. तेथी पण अनुमान करी शकाय के गौतमस्वामीना रासनी रचना कर्या बाद केवले गौतमपृच्छा चोपाईनी रचना करी हशे.''

गौतमरासनुं रचनावर्ष १४१२ छे, गौतमपृच्छा चोपाईनुं लेखनवर्ष

१८५२ छे (रचनावर्ष नहि). सम्पादक अहीं रचनाना ने लेखनना वर्षने अेक ज समजीने चालतां लागे छे; ने १४१२/१८५२ आ बेनो गाळो विचार्या वगर अे बन्ने वर्षोमां 'केवल'नुं अस्तित्व होवानुं स्वीकारीने चालतां जणाय छे.

बीजी वात : विनयप्रभ अे रास-कर्ता तरीके सिद्ध छे. छतां सम्पादक रासना कर्ता तरीके 'केवल' नामनी व्यक्तिने स्वीकारे छे. तेमनुं तारण जोईअे :

''बीजुं, केवले पुष्पिकामां पोताना नामनो उल्लेख कर्यो नथी, तेम छतां रासोमां ''गोयम गणहर केवल दिवसे'' (कडी ४५) लखाण मळे छे जे रासोना कर्ता 'केवल' हशे एवुं दर्शावे छे.''

केवी विडम्बना छे आ ! ''गोयम-गौतम गणधरने केवल-केवलज्ञान प्राप्त थयुं ते दिवसे - कार्तक शुदि अेकमे'' आ रास रच्यानी वात कर्ता नोंधे छे; ने आ सम्पादकश्री तेमांथी 'केवल' नामना रास-कर्तानी शोध करी आपे छे !

आगळ वधतां सम्पादके विधान कर्युं छे के ''विनयप्रभ अने बीजा केटलाकनी हस्तप्रतमां 'गोयम गणहर केवल दिवसे' ने बदले 'खंभ नयरि सिरि पासपसाई' पद जोवा मळे छे. तेथी पण अनुमान करी शकाय के विनयप्रभअे केवलना नामने बदले आ पदना(नी) रचना करी हशे.''

आनो शो अर्थ थाय ए समजमां आवे तेम नथी. रासना कर्ता विनयप्रभ; 'खंभ नयरि' वाळी कडीओ ते पाछळथी थयेल उमेरण; उमेरण करनारे 'गोयम गणहर०' वाळी मूळ-कडीने काढी नाखी तो नथी ज; ते तो तेना स्थाने यथावत् छे; छतां रासने 'केवल'नी कृति माननारां सम्पादक विनयप्रभे आ पंक्ति बदली होवानो निष्कर्ष आपे छे ! केवुं मजानुं संशोधन !

ई. २०१२ ना वर्षे पावापुरीमां महावीर जैन विद्यालय द्वारा आयोजित 'जैन साहित्य समारोह'मां आ शोधपत्र रजू थयेलुं छे, अने प्राच्यविद्या मन्दिर - वडोदरा द्वारा प्रकाशित 'स्वाध्याय' त्रैमासिकमां ते मुद्रित थयुं छे, त्यारे तेमां थयेला आवां विविध छबरडां जोईने, साव स्वाभाविक रीते ज, घेरो आघात थाय छे. आपणा संशोधन-क्षेत्रनी तथा कार्यनी गुणवत्ता केटली ह्रास पामी चुकी छे, ते आमां फलित थाय छे. गौतम-रासना कर्ता विषे तथा तेनी आमां छपायेली गलत वाचना विषे आवता समयमां केटला लोकोने केटली गेरसमज थशे ते कल्पनानो विषय छे. अस्तु.

नवां प्रकाशनो

१. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित - विभाग १
(पर्व १)
सम्पादक - मुनि श्रीचरणविजयजी
पुनःसम्पादक - श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी
प्रकाशक - क.स. नवम जन्मशताब्दी स्मृति शिक्षणनिधि, अमदावाद
पृष्ठसङ्ख्या - २२ + २२२ = २४४
मूल्य - ३००

२. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित - विभाग २
(पर्व २, ३, ४)
सम्पादक - मुनि श्रीपुण्यविजयजी
पुनःसम्पादक - श्रीविजयशीलचन्द्रसूरिजी
प्रकाशक - क.स. नवम जन्मशताब्दी स्मृति शिक्षणनिधि, अमदावाद
पृष्ठसङ्ख्या - १४ + ३३८ + ९३ = ४४५
मूल्य - ५०० ₹

पूर्वप्रकाशित आ बन्ने ग्रन्थोनुं पुनः अक्षराङ्कन अने शुद्धीकरणपूर्वकनुं पुनः सम्पादन. त्रिषष्टिकाव्यना अध्येताओ माटे शुद्ध अने समीक्षित आवृत्ति.

आवरणचित्र-परिचय

लाखथी बनेला पुंठा, जेने जैन ज्ञानभण्डारनी परिभाषामां 'पाटली' के 'पुंठियुं' कहेवामां आवे छे ते, उपर कोई कुशल चित्रकारे आलेखेलां चित्रो पैकी बे चित्र, अहीं आपेल छे.

आवरण १ पर मूकेलुं चित्र सुलसा श्राविका अने तेने भगवान महावीरे पाठवेलो संदेशो आपी रहेला अम्बड परिव्राजकनुं चित्र छे. ढोलिया पर तकियाने अढेलीने बेठेली सुलसा, भगवानना नामनी माळा फेरवती संदेशो ग्रहण करे छे, ते केवी जाजरमान दीसे छे ! तेनो अलङ्कारमण्डित छतां पूर्ण मर्यादाशील पहेरवेश, उत्सुक अने विस्मित आंखो, माळा फेरववानी रीत, आ बधुं भावक-दर्शकने प्रथम दृष्टिए ज आकर्षी ले तेवुं छे. तो सामे, हाथमां - खभे स्थापेल - दण्ड तेमज पुष्पछाबडीने पकडीने, पगमां चाखडी पहेरीने, एक पग ऊंचो राखीने, तापससहज रूक्ष नजर साथे ऊभेलो अम्बड पण केवो सर्वाङ्गसम्पूर्ण संन्यासी लागे छे ! तेनो देह-वान लीलो छे, जाणे भभूत चोपडी होय आखा डीले ! तेनुं कौपीन पण केवुं रंगीन-सुन्दर ! कलाकारे जाणे जीव रेडी दीधो छे ! तेमांये काळी पृष्ठभू (Back ground) केवी रळियामणी दीसे ! आखा चित्रने ए केवुं मस्त उपसावे !

आवरण ४ परनुं चित्र सती सुभद्रानी घटना आलेखे छे. तेना पर तेना सासु, पति व. द्वारा बदचलननो आक्षेप थयो छे. तेथी पोतानुं सतीत्व पुरवार करवा ते चाळणी वती कूवामांथी पाणी काढे छे. पाणीभरेली चाळणीमां असंख्य छिद्र होवा छतां, तेनी पवित्रताना प्रभावे एक पण टीपुं पाणी पडतुं नथी. ते पाणी वडे ते, नगरना नहि ऊघडतां द्वारने, जळ-छंटकाव करीने ऊघाडी नाखे छे.

चित्रमां कूवो, तेना थळा उपर ऊभीने पाणी सिंचती सुभद्रा, तेना बन्ने हाथमां पकडेली दोरी, ते वडे बांधेली ने कूवामां प्रवेशेली चाळणी, पूजापो लईने पाछळ ऊभेली बे सखीओ, चार दिशामां देखाता चार दरवाजा; श्यामरंगी पार्श्वभू उपर, राजस्थानी शैलीमां आलेखायेल आ समग्र दृश्य-चित्र केटलुं मनभावन बन्युं छे !

अनुमानतः १९मी सदीनी आ चित्र-रचनानी कलर जेरोक्स ज उपलब्ध थई छे. मूळ चित्रो-पुंठियां क्यां, कोनी पासे, तेनी जाण नथी. एक सज्जने केटलांक वर्ष अगाऊ, आ जेरोक्स नकलो आपेली, तेना आधारे आ चित्रो अहीं प्रकट थाय छे.